प्रकाशक : भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली-१
वितरक : भारती साहित्य सदन सेल्स
३०/९०, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१
मूल्य : दो रुपये मात्र
मुद्रक : एन० एल० ऐण्ड एल० एन० कम्पोज़िंग एजेन्सी द्वारा
आदर्श प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

GOMANTAK (Novel) : V. D. Savarkar : Price 2.00

गोमांतक

पूर्वार्द्ध

: १ :

यह देखो 'दारका', तापहारिणी लोक-माता ! फेन-धवल उसका नीर देखो, कैसी प्रतिपदा के चन्द्रमा की कोर-सी उसकी कांति। हलाहल-पान से भगवान् शंकर के शरीर का दाह शांत करने में व्यस्त मानो भगवती गंगा ! सम्राट् भगीरथ द्वारा पूर्वजों के पाप-प्रक्षालनार्थ मानो वसुधातल पर लायी गई हो ! इस महत् कार्य में वह सतत-व्यग्र पवित्र भागीरथी और जाह्नवी (गंगा) की बहिन ही है यह 'दारका' ! फिर वह क्यों कम रहेगी ? गंगा के समान इसकी पुण्याई बेशक बड़ी न हो, किन्तु दीन-प्यासों की प्यास बुझाने का पुण्य तो इसे प्राप्त ही है ! सिहनी अगर अपने बच्चों को स्तनपान कराती है तो हिरनी भी अपने बच्चों को दूध पिलाती ही है। उसी तरह 'दारका' अपने तटों पर प्यासों की प्यास बुझाती हुई जीवन-दान देती बह रही है, अपना जीवन धन्य कर रही है।

और यह देखो, दारका के रम्य तट पर एक छोटा-सा ग्राम, भार्गव ! दारका की रमणीयता में इस छोटे-से ग्राम ने कैसा रंग ला दिया है ! मोतियों की बेल के सिरे पर फूलों के गुच्छे के समान सुशोभित, यह छोटा-सा गाँव कैसा सुन्दर लगता है ! चारों ओर हरे-हरे खेत और बीच में बसा हुआ यह ग्राम समुद्र से घिरे हुए एक छोटे-से द्वीप-सा शोभायमान हो रहा है। पक्षियों की चहचहाहट के साथ भोर हुई तो रहट चलाने वाले कृष्ण ने बैलों को आवाज़ देकर हाँका और प्रभात की सुगंधित वायु के साथ-साथ उसका स्वर भी आकाश में गूंज उठा। उस रहट से गिरने वाले जलप्रपात के शब्द से आकाश गूंज रहा था। उसकी स्निग्ध गम्भीर ध्वनि सुन मोर पंख फैलाकर नृत्य

करने लगे। ऐसा था यह निसर्ग-सौन्दर्य का वरदान प्राप्त भार्गव ग्राम! किन्तु जैसे कोई सुन्दर शरीर तपेदिक की बीमारी से दुरावस्था को प्राप्त हो जाये या बिजली के गिरने से जैसे कोई वृक्ष जल जाये, वैसी स्थिति परचक्र के आघातों के कारण इस दुर्दैवग्रस्त ग्राम की भी थी। उसके टूटे-फूटे परकोटे की दीवारें कहीं-कहीं ऊँची खड़ी दिखाई दे रहीं थीं। निकट ही जीर्णावस्था में एक शिवमंदिर अब भी जैसा-तैसा खड़ा था। गाँव के लोगों का यह एकमात्र श्रद्धास्थान था। मंदिर के चारों ओर थीं चम्पा के फूलों की झाड़ियाँ। देव-दर्शन के लिए आयी हुई देवियाँ उधर परिक्रमा करतीं, तो इधर उनके बच्चे चम्पा-पुष्पों की मालायें गूँथते। पास ही एक मठ दिखाई दे रहा था। उस मठ के आँगन में था पारिजात वृक्ष, पुष्पों के भार से झुका हुआ। सारा गाँव उस वृक्ष के अभिमान से ओत-प्रोत था। इसके पीछे वह दंत-कथा काम करती थी, जो वहाँ का बच्चा-बच्चा बड़े गर्व से बताया करता। स्वयं श्रीकृष्ण ने यह कथा देवर्षि नारदजी से कही थी। कथा थी—श्रीकृष्ण स्वर्ग से पारिजात वृक्ष लाये और सत्यभामा के आँगन में उसको रोपना चाहा, तो रुक्मिणी को ईर्ष्या हुई। उन्होंने इसे रुक्मिणी के आँगन में रोपना चाहा तो सत्यभामा को सहन न हुआ। इसलिए भगवान् ने इस ईर्ष्या को समाप्त करने के लिए वह पारिजात वृक्ष मुनिश्रेष्ठ भृगु को अर्पण कर दिया। मुनिवर ने वह वृक्ष अपने आश्रम में लगाया। "वह महर्षि भृगु का आश्रम ही तो यह मठ है और उनका लगाया हुआ वह वृक्ष यही पारिजात है।"

गाँव के मध्य भाग में एक छोटा-सा बाज़ार था, जिसमें पाँच-सात दुकानें थीं। दुकानों की दीवारें चूने से रंगी थीं और गेरुए रंग से उन पर नक्काशी की गई थी। गाँव के रंगीले जवान शाम को इधर ही आकर टहलते थे। खेतों में जाने वाली स्त्रियाँ प्रातः दुकानों में अपनी तेल की बोतलें रख जातीं और शाम को लौटते समय तेल ले आतीं। चीज़ों के लेन-देन के लिए कौड़ियों का प्रयोग होता था और कभी चीज़ों की अदला-बदली हुआ करती थी। बनिया 'मूल' से कभी दुगुने दाम वसूल कर लिया करता था। वहीं एक मोटे पेट वाले सेठ की दुकान थी। उसकी दुकान बाकी दुकानों से कुछ ही बड़ी थी, किन्तु

उसी को लोग बड़ा आढ़ती समझते थे। दुकान के सामने आवारा बच्चों के शोर से सेठजी क्रोधित हो उठते; किन्तु उनके डंडा उठाकर अपनी विशाल देह को अपने पैरों पर सम्भालने से पहले ही वे बच्चे चम्पत हो जाते। प्रातःकाल गौओं को लेकर ग्वाले जंगल की ओर निकलते। अपनी गाय भेजने में श्यामजी पंडित हमेशा ही देर करते। तब वे ग्वाल-बाल पंडितजी को तंग करने के लिए उनसे छू जाते, जिससे पंडितजी को फिर से स्नान करके शुद्ध होना पड़ता। हर साल पड़ोस के गाँव में मेला लगता और दंगल होता। भार्गव गाँव का कोई-कोई जवान भी उसमें खम ठोक कर उतरता। जाते समय माँ के चरण-स्पर्श करता। माता उसे आशीष देते समय कहती, "होशियार रहना बेटा और जीत कर आना।" तब वह आत्म-विश्वास से मुस्कराकर मूँछों पर हल्का-सा हाथ फेरता। माँ का आशीष कभी व्यर्थ नहीं जाता। वह अपने से दुगुने जवान की पीठ लगाकर लौटता। उसी विजयी वीर के स्वागत के लिए तथा उसके सिर पर पगड़ी बाँधने के लिए गाँव की सीमा पर सब स्त्री-पुरुषों की भीड़ इकट्ठी हो जाती। जयकारों से आकाश गूँज उठता और वह जवान छाती तान कर ऐसी शान से डोलता हुआ एक-एक कदम उठाता आगे बढ़ता मानो रावण को मारकर राम ही अयोध्या को लौट रहा हो।

गाँव के सभी झगड़े पंचायत में निपट जाते और गाँव का पटेल गाँव की रक्षा के लिए सदा सन्नद्ध रहता। गाँव के पंडितजी सभी ग्रामीण जनों को उनके धर्म-कर्म की शिक्षा दिया करते। इस प्रकार दैवी और भौतिक संकटों के परिहार की व्यवस्था होने के कारण किसान निश्चितता से अपनी खेती करते। हरे-भरे खेतों पर लहलहाने वाली अनाज की सुनहरी बालें ऐसी लगतीं जैसे शरीर के भीतर प्राण। उन्हें देखकर घर-घर में सन्तोष फैल जाता। खलियान में अनाज के ढेर लगने पर कुम्हार, बढ़ई, जुलाहे, लुहार आदि ग्राम्य-जीवन के हिस्सेदार इकट्ठे होते और वर्ष-भर किये गए परिश्रम के बदले में किसान से अपना-अपना अनाज का हिस्सा पाते। साल-भर के लिए पर्याप्त अनाज रखकर बाकी सब पटेल की देख-रेख में पंचायत के कोठे में जमा हो जाता। दुर्भाग्यवश यदि कभी अकाल पड़ जाता तो उसी से सबका

गुज़ारा हो जाता। ऐसी थी ग्राम-पंचायत की व्यवस्था, जिसके कारण प्रत्येक ग्राम मानो एक स्वतंत्र जनतंत्रात्मक राज्य ही हो। ऐसा मन-मोहक चित्र था, उस भार्गव ग्राम के लोक-जीवन का। पर यह तो था बीता हुआ ज़माना। आज उस ग्राम की क्या हालत थी ?

परकीयों के आक्रमण से लोक-जीवन के साथ-साथ ग्राम-संस्थायें भी मृतवत् हो गई थीं। अब तो विदेशियों की—पाशवी पुर्तगालियों की हुकूमत चल रही थी। बाज़ार में शराब की दुकानें खुल गई थीं और नये-नये करों से किसान पिस रहा था। बेचारा जैसे-तैसे जी रहा था। किन्तु एक विशाल वट-वृक्ष अब भी मानो अपनी ज़िम्मेदारी निभाता हुआ वहाँ अटल खड़ा था, सदियों से नहीं शायद युगों से। जिस दिन वीर-श्रेष्ठ परशुराम ने समुद्र को हटा कर इस भूमि पर अपना विजय-ध्वज उभारा, उसी दिन उस भार्गव ने की थी इस भार्गव ग्राम की स्थापना और अक्षय वट-वृक्ष का बीजारोपण। उस वृक्ष के इर्द-गिर्द एक विशाल चबूतरा था। वह अनघड़े बड़े-बड़े पत्थरों का, बिना चूने-गारे के बना हुआ था। किन्तु ग्रामवासी बड़े गर्व से कहा करते कि इतना बड़ा चबूतरा संसार में कहीं नहीं होगा। गाँव में आने वाला यात्री उस वृक्ष के नीचे चबूतरे पर विश्राम करके ही आगे बढ़ता। ग्रामीण भी उस चबूतरे पर दिन-भर बैठकर गप्पें हाँकते। गाँव की सभी बातों की वहाँ चर्चा चलती। दिन-भर मानो खुला सभा-गृह और रात में नाटक-तमाशे की रंग-भूमि। एक बार तबला-ढोलक और झाँझ-मँजीरे का रंग जम जाता और स्वाँग और लोक-गीतों की स्पर्धा शुरू हो जाती, तो रात भी कम पड़ती। कभी कोई साधु-महात्मा आ जाते, तो वह भी चबूतरे पर धूनी लगाकर बैठ जाते और चिलम के धुएँ के साथ गपोड़बाजी भी चलाते। वट-पूजा व्रत के दिन नव-विवाहिता वधुएँ उस बूढ़े वट-वृक्ष की पूजा करतीं और धागा लपेटतीं, तो जवान वृक्षों को भी उससे ईर्ष्या होती। उधर उस महान् वट-वृक्ष की ग्रामीणों पर छत्र-छाया थी, तो निकट ही उधर पुर्तगाली सिपाहियों की चौकी भी थी। तहसीलदार जब दौरे पर आकर वहाँ टिकता तो गाँव में खासी हलचल मच जाती। हरएक किसी-न-किसी बहाने से उधर से निकलता और डरता-चौंकता उस थाने की ओर देखता। गाँव के पटेल की मूँछें

बड़ी भव्य थीं और पटवारी की कलम भी कम बहादुर नहीं थी। पर दोनों ही तहसीलदार के सामने कमर झुकाकर सलाम करते और तहसीलदार साहब ज़रा-सी गर्दन हिला देते। तब ऐसे अक्खड़ साहब का गाँव के लोगों को डर लगना स्वाभाविक ही था। पुलिस-चौकी के पास ही पुर्तगालियों का एक स्कूल खुल गया था। उसकी वजह से आचार्यजी की पाठशाला वीरान हो गई। फिर आचार्यजी को क्रोध क्यों न आता ? पुर्तगालियों के स्कूल में बच्चों को 'अ, आ' सिखाने की बजाए 'ईसा मसीह, क्रास कोलम्बिया, अल्बुकर्क' आदि के ही पाठ रटाये जाते। हाय ! कितना यह दुर्भाग्य !

यह 'पुर्तगाली' शब्द सुनते ही पिछले सौ वर्ष से उस गाँव में आतंक छा जाता। जैसे कोई गाय किसी भेड़िए से पीड़ित हो और उसी समय शेर उस पर झपट पड़े, ऐसी स्थिति गोवा में पुर्तगालियों के पाँव जमते ही पैदा हो गई थी। गोवा की जनता पहले इस्लामियों से पीड़ित थी और अब उनसे भी अधिक क्रूर ईसाइयों के जबड़े में आ गई थी। वन में शेरों से त्रस्त हिरण जिस प्रकार अपने झुण्डों में जैसे-तैसे जीते रहते हैं, उसी प्रकार गोमांतक-रूपी वन में यह भार्गव ग्राम जैसे-तैसे जी रहा था।

इस सादे गाँव में एक ब्राह्मण-परिवार रहता था, जो अत्यन्त सुशील, सुप्रतिष्ठित, सर्वप्रिय था। इस परिवार का इतिहास भी तेजस्वी था। श्री महामंडलाधीश कदम्ब महाराज के जमाने में इस कुल के लोग राज-पुरोहित का सम्मान पाते थे। किन्तु जिस दिन इस देश पर विदेशी परचक्र आया और स्वातंत्र्य नष्ट हो गया, उस दिन इस कुल के पुरुष पंडिताई छोड़कर खड्ग धारण कर रणांगन में कूद पड़े थे। अनेकों ने देश-स्वातंत्र्यार्थ धर्म-युद्ध में अपनी देह समर्पित की थी। एक बार इस कुल की एक स्त्री को तुर्क अधिकारियों ने पकड़ कर बेच दिया और उसे अन्य ज़बरन पकड़ी हुई स्त्रियों के साथ अरब जहाज़ पर चढ़ा दिया। उस तेजस्वी ने इन अत्याचारी मानवों की अपेक्षा समुद्र के जलचर ही अच्छे समझकर अपनी शील-रक्षा के लिए समुद्र में छलांग लगा दी थी। मुसलमानों की पाशवी हुकूमत में मूर्ति-भंजक तुर्कों के आघातों से सारे देवी-देवता नष्ट हो गए। श्री मंगेश

तथा शांता भवानी, ये ही केवल अपने स्थान पर स्थिर थे। बाद में जब प्रसिद्ध मंदिरों का विध्वंस करते हुए मुसलमानों से सवाये क्रूर पुर्तगालियों के आघात उस प्रदेश में होने लगे तो इन प्रसिद्ध देवताओं में आतंक छा गया। दुर्बलों के देवताओं में भी बल कहाँ से होगा ? पुर्तगालियों का हमला आ रहा है, यह देखकर श्री मंगेश और शांता भवानी के ब्राह्मण भक्तों ने उन मूर्तियों को गुप्त रूप से ले जाकर 'अंत्रुज' नाम के स्थान में उनकी स्थापना कर दी। इन जवान और प्राणों की भी परवाह न करने वाले ब्राह्मणों में उस प्रसिद्ध कुल का एक वीर पुरुष था।

उस कुल पर हुए भीषण आघातों से बचा हुआ एकमात्र तरुण इस भार्गव ग्राम में अपने स्वर्गीय पुरखों के पुराने घर में ही रहता था। उस तरुण की सुशील पत्नी आयु से बेशक तरुणी थी, किन्तु प्रौढ़ा स्त्री के समान गृहिणी का दायित्व निभाती थी। घर साफ-सुथरा रखना और सुन्दर रसोई पकाना, ये उसके लिए मामूली बातें थीं। छोटे-बड़ों से मीठा बोलती, बच्चों को पढ़ाती और बड़ों की सेवा करती। उसकी मधुर वाणी से ही सेवकों को वेतन से भी अधिक सुख प्राप्त होता। वह भाग्यवती ऋण लेने के लिए आने वाले किसान का भी नाश्ता-पानी से स्वागत करती। अपने बाग के आमों से जब घर भर जाता तो वह भी आमों का आँगन में ढेर लगाती और सब जातियों की सुहागिनों को बुलाकर लुटवाती। उस सुशीला का पति किंचित् क्रोधी अवश्य था, किन्तु उतना ही सुशील और भावुक भी। उन दोनों का एक-दूसरे के प्रति असीम प्रेम था।

रमा-माधव के उस मधुर पारिवारिक जीवन में एक सुख का पुष्प खिला। इस नए सुख में अन्य सब सुख फीके लगने लगे। अर्थात् उस साध्वी रमा ने अपने वंश के यश-गौरव को बढ़ाने वाले एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। रमा अब माँ हो गई थी।

इस दिव्य बालक के जन्म पर आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई। सब प्राचीन ऋषि-मुनि आशीर्वाद देने के लिए स्वयं एकत्र हुए। गंधर्वों ने गायन किया। पर इन सब बातों की ओर ध्यान देने के लिए उस बालक के माता-पिता को समय कहाँ ? वे तो अपने नवजात शिशु के

मधुर चुम्बन लेकर उत्कट वात्सल्य की वर्षा करने में ही व्यस्त थे। अयोध्या में राम-जन्म के पश्चात् प्रकट हुई दशरथ-कौशल्या की उत्कट पुत्र-प्रीति दुन्दुभियों द्वारा दसों दिशाओं में निनादित हुई थी। रमा-माधव की पुत्र-प्राप्ति पर इस प्रकार गाना-बजाना तो नहीं हुआ, किन्तु उन सामान्य माँ-बाप के साधारण घर का वह प्रेमोत्सव चाहे मूक ही था, परन्तु अपने में असामान्य ही था। रमा ने पहला स्तन-पान जब अपने लाडले को कराया तो उसके मातृ-हृदय में वात्सल्य की जो विद्युत् संचारित हुई उसकी तुलना क्या कौशल्या के रघुनंदन को कराए प्रथम स्तन-पान से नहीं की जा सकती? कौशल्या सिंहासनस्थ साम्राज्ञी होगी और रमा एक सामान्य स्त्री, किन्तु इस कारण से मातृ-हृदय की उत्कट वात्सल्य-भावना कम कैसे कही जा सकती है?

रमा अब अपने पुत्र की बाल-लीलाओं में रम जाती। बालक शंकर ने जब अपनी तोतली बोली से पहली बार 'माँ' कहकर पुकारा, तब वात्सल्याश्रुओं से रमा का पल्ला भीग गया। उसकी बाल-लीलायें माता-पिता की आँखों को रिझातीं। बालक का शरीर सुडौल होने लगा। वह जब ठुमक-ठुमक कर चलता तो उसके कर्ण-भूषण डोलते। कभी वह स्वयं ही माँ के मुँह में अपने हाथ से ग्रास देता। खिलौनों में उसे घोड़ा पसन्द था। वह हाथ में आया तो फिर और किसी बात की ओर ध्यान न रहता। कभी पिता का कोई कपड़ा छिपाकर रखना तो कभी उनका मार्ग रोककर दरवाज़े में खड़ा हो जाता।

इस प्रकार रमा का वह गुणवान बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगा, रमा का सब सुख उसी में केन्द्रित हो गया। उसका लालन-पालन तथा संवर्धन रमा के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया। स्तन-पान के साथ-साथ उसने उसको प्रेम और रीति-नीति के पाठ भी पढ़ाए। इस बच्चे के लालन-पालन से उसकी जीवन-गंगा को एक नई गति प्राप्त हुई। उसकी जीवन-दृष्टि नई-नई कल्पनाओं से विभोर होने लगी। कोई व्रत जिस आस्था से निभाया जाता है, उतनी ही आस्था एवं निष्ठा से रमा ने अपने बालक के संवर्धन का व्रत निभाया।

एक सुहावनी उषा में पक्षियों ने चहचहाना शुरू किया तो रमा नित्य के समान उठी। दासियाँ थीं, किन्तु स्वयं ही उसने आँगन में

छिड़काव किया। तुरन्त ही स्नानादि से वह निवृत्त हुई और आँगन में स्वत: लगाए फूल-बाग से पूजा के लिए फूल तोड़ने गयी। कितना सुन्दर था वह बाग। उषाकाल की नयनाभिराम रंगीन शोभा और उससे स्पर्धा करने वाली बाग के फूलों की सुगंध-शोभा! क्षण-भर उस निसर्ग-निर्मित कौतुक में रमा तन्मय होकर रम गयी। फिर फूल तोड़ते-तोड़ते उसके मुख से मंजुल गीत-पंक्तियाँ मुखरित हुई, मानो प्रभातकालीन शान्ति की मधुर वीणा ही मूर्तिमंत हो उठी हो।

वह फूल लेकर लौटी और धीरे-से पति और पुत्र को जगाया। उन दोनों के प्रसन्न मुख को देखकर उसकी आँखों में आनन्दाश्रु चमक उठे।

रमा जब पूजा के लिए बैठती और ध्यानस्थ होकर जाप करती तो उसका बालक प्रेमपूर्वक उसकी ओर देखकर मुस्कराता। कभी वह माँ को छेड़ता तो कभी पूजा की अगरबत्ती के धुएँ को पकड़ने दौड़ता।

रमा स्वच्छ गरम पानी से उसे स्नान कराती। फिर एक-एक शब्द कहकर भगवान का कोई स्तोत्र उससे कहलवाती। शुरू में स्तोत्र के वह शब्द ही उच्चारण करता, किन्तु धीरे-धीरे जैसे कमल की एक-एक पंखुरी खिलती है और पूर्ण कमल खिलने पर कोई पुजारी उसकी शोभा पर आश्चर्य-मुग्ध होकर निहारता है, उसी प्रकार बालक के हृदय-कमल की पंखुरियाँ खिलकर उस हृदय-कमल में स्तोत्र की अर्थ-श्री अवतरित हुई देख, रमा उसको अपने हाथ से दूध-भात खिलाती। शैशव-काल में माँ के हाथ से मिलने वाले ग्रास की मिठाई अच्छे-अच्छे सुन्दर पकवानों में भी नहीं होती। माँ का वह निःस्वार्थ प्यार अन्य किसी से कब मिल सकता है?

एक दिन रमा अपने पति से हँसते-हँसते कहने लगी, "अपने शंकर का अगले ज्येष्ठ मास में पाँचवाँ वर्ष शुरू होगा। उस दिन उसकी वर्षगाँठ के निमित्त वन-भोजन का सुन्दर आयोजन क्यों न किया जाय?" उसके इस प्रस्ताव पर शंकायें उठीं, टीका-टिप्पणी भी हुई, किन्तु अन्त में सबने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और भोजन के कार्यक्रम के लिए सब मित्र-स्नेही आमंत्रित किये गए।

वर्षगांठ के वसंतोत्सव का वह मंगल-दिन उदय हुआ। मंगलवाद्यों

की मंगल-ध्वनि से मंगल-प्रभात निनादित हुआ। फूलों की मालाओं से छकड़े सुशोभित किये गए। युवतियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के पकवान तैयार करके अपने साथ ले लिए। सारी मंडली तैयार हुई और छकड़े निकल पड़े। प्रवास आरम्भ हुआ। खेतों की फसलें, पशु-पक्षी, फल-फूल, सभी वस्तुएँ मानो सौन्दर्य से परिपूर्ण प्रतीत हो रही थीं। शंकर सहज ही किसी वस्तु की ओर आकर्षित होकर उत्सुकता से उसका नाम पूछता, तो कभी किसी वस्तु की ओर उँगली से निर्देश करके आनन्दित होता। छकड़े जब खेतों में चरमराते हुए दौड़ते और पक्षियों के झुण्ड आकाश में उड़ते जाते, उन्हें देखकर शंकर माँ से पूछता, "माँ! कभी मनुष्य भी आकाश में उड़ सकेंगे?" माँ प्रेम से समझाती, "बेटा, भगवान् ने पक्षियों को पंख दिए हैं, मनुष्यों को नहीं।" यह उत्तर सुन बालक क्षण-भर चिंतित हो जाता। किन्तु तुरन्त ही उसको सूझता, "देख माँ! मनुष्य ऐसा क्यों नहीं करते कि पहले बड़े-बड़े पक्षियों को पकड़कर उनके पैरों में गाड़ी बाँध दें और फिर पक्षियों को उड़ा दिया जाये। तब हम भी क्यों नहीं उड़ सकते?" इन तोतली बातों को सुनकर वत्सल माँ प्रेम-पूर्वक उसका चुम्बन करने के सिवाय क्या उत्तर देती?

निकट के आमों के बाग से कोयल-कलरव सुनाई देने लगा। बाजार में अपना माल बेचने के लिए जैसे बनिया ग्राहकों को पुकारता है, वैसे ही मानो कोयल आम के बाग का वैभव वर्णन करती हुई ग्राहकों का आवाहन कर रही हो। आओ! यात्रियो आओ! आकर इस पूर्ण-मन्दिर में तो देखो। इस आम्र-वन में ऋतुराज वसन्त ने अपना सारा वैभव इकट्ठा किया है। वसन्त की असली बहार तो यही है। ग्रीष्म की गरम वायु से शरीर तृप्त हो जाए, तो तृष्णा शान्त करने के लिए भीलनियाँ यहीं तो आती हैं। यहाँ के ये आम्र-वृक्ष और सुधा-रसपूर्ण आम्र-फल! और इन 'सत्फलों का त्याग' करने वाले ये आम्र-वृक्ष मानो कोई योगी-मुनि ही हैं। शरीर को शीतल करने वाली यह वृक्षों की छाया, स्नान करने के लिए यह निर्मल झरना, गाकर रिझाने वाले आम्र-फलों का यह अमृत-रस! कितना सुन्दर यह सारा स्थान!

ज्योंही वे आम्र-वन में प्रविष्ट हुए, वहाँ के हृष्ट-पुष्ट किसान ताजे-

ताजे फल लेकर सामने उपस्थित हो गए। उत्सुकता से वे पूछने लगे, "माँ जी! हमारे वे छोटे जागीरदार कहाँ हैं ? उनके हमें पहले दर्शन कराइए।" और फिर छोटे शंकर को देखते ही प्रसन्न होकर उसका कौतुक करने लगे। किसी ने उसको कंधे पर उठा लिया और नाचने लगा तो कोई उससे हँसी-विनोद करने लगा।

अब उस आम्र-वन में उन नर-नारियों का स्वच्छन्द-विहार शुरू हुआ। यह सारा दिन ही आनन्दपूर्ण रहा। पीले-पीले सुन्दर सुगन्धित आम मधुर-रस से भरे हुए थे। उनकी शोभा निहारते रहें या उनको तोड़ कर उनका रस चखें ? कुछ निश्चय नहीं हो रहा था। काँटेदार कटहल फल भी थे। विना स्वाद लिए उनकी मिठास का पता नहीं चल सकता था। एक-एक आम्र-वृक्ष को फल भी कितने-कितने लगे थे। वे रस-भरे मीठे आम चखते तो कभी बीच में ताजे रसदार जामुन खाते, कभी गुलाव के फूलों की मालाएँ गूँथते तो कभी मालाएँ गलों में डालकर इधर-उधर टहलते और कहीं मोरों का नृत्य देखने में खो जाते। ऐसी मन-भाती क्रीड़ा करने के वाद सव भोजन के लिए वैठ गए। नाना प्रकार के पकवान और साथ-साथ विनोदपूर्ण चुटकुले, ऐसा आनन्दमय वातावरण! सभी लोग सज्जन और सात्विक वृत्ति के होने के कारण सारा दिन वड़े आनन्द से वीता। उस सव सात्विक आनन्द प्राप्त करा देने वाले भगवान् का स्मरण कर सवने उसका धन्यवाद किया।

सूर्यदेव अब सायंकाल के शिविर में विश्राम के लिए प्रविष्ट हुए। इसके साथ ही सृष्टि के दिन-क्रम के वंधन भी शिथिल हो गए। चरने वाली दुधारू गौएँ चरवाहों के पीछे-पीछे घर लौटीं। बीच में दारका नदी के पानी में उतरकर पीते-पीते वछड़ों की आर्त-ध्वनि उनके कानों पर पड़ी। यह सुनते ही वछड़ों से मिलने के लिए उनका वात्सल्य उमड़ पड़ा और उनके स्तनों से मंदोष्ण दूध की धाराएँ वह कर दारका के पानी में मिल गईं। नील-श्वेत गंगा-यमुना के प्रवाह के समान वह दारका नदी उस क्षण शोभायमान हुई और उसके तट पर स्थित भार्गव ग्राम मानो छोटा प्रेम-प्रयाग तीर्थ-सा लगने लगा। उस सायं सृष्टि की करुणरम्य शोभा देखते-देखते वन-भोजन के लिए गई हुई नर-नारियों

को मंडली भी गाँव की ओर लौटी।

: २ :

गाँव में कदम रखते ही सबने देखा कि चारों ओर सूनापन छा रहा है। उन्हें उस विचित्र शांति का अर्थ ही समझ में नहीं आ रहा था। वे इधर-उधर घबराये हुए-से देखने लगे। उनकी चलने की रफ्तार बढ़ने लगी। वे कुछ तेज़ी से आगे बढ़े, लेकिन उनके प्रत्येक कदम से भय प्रकट हो रहा था। उन्हें कभी कहीं से किसी की पुकार सुनायी देती तो कहीं काना-फूसी। भयभीत हिरनियों के झुण्ड में मानो एक-आधा हिंस्र-पशु घुस गया हो, ऐसी ही उस भार्गव गाँव की हालत थी। वन-भोजन से लौटने वाली वह सारी मंडली जैसे-तैसे वट-वृक्ष के चबूतरे के पास पहुँची ही होगी कि एकाएक पुर्तगाली सिपाहियों का एक दल संगीनें तानकर उनकी ओर आ बढ़ा। वे पुर्तगाली निरे क्रूर पशु-से ही प्रतीत हो रहे थे। उनके क्रोध-भरे शब्द से ही साधारण जनता को कँपकँपी होने लगती थी, फिर शस्त्र सम्भाल कर अत्याचार को आतुर उन पुर्तगालियों के सामने किसका वश चलता ? बेचारे गाँव वाले उन नराधमों के हुक्म से पहले ही उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए और काँपती आवाज़ में पूछने लगे, "आपके इस क्रोध एवं अनर्थ का क्या कारण है ? कुछ हमें तो बताएँ ?"

किन्तु क्रूर भेड़िये को दीन-दुबली भेड़-बकरियों पर झपटने के लिए क्या किसी कारण की आवश्यकता होती है ? फिर, क़िसी भेड़ के प्रश्न का कोई भेड़िया उत्तर भी क्यों देने लगा ! वे पुर्तगाली, दुष्टों के स्वभाव का अपवाद कैसे सिद्ध होते ? पुर्तगालियों ने उन लोगों के वे भय-कंपित प्रश्न पूरी तरह सुनने का कष्ट ही नहीं किया। उनके प्रश्न समाप्त होने से पहले ही उन्होंने रमा और माधव को घेर लिया। क्षण-भर में दो राक्षसी सिपाहियों ने उन दोनों को घसीटकर कुर्सी पर बैठे गोरे पुर्तगाली अधिकारी के सामने ले जाकर ऐसे पटक दिया जैसे किसी साँप के बिल में एक-आध मछली डाल दी जाये। मस्तक पर अकस्मात् गदा-प्रहार होते ही जैसे किसी को बेहोशी आ जाये, वैसे ही दुष्ट सैनिकों के शरीर-स्पर्श से ही उस सती रमा को मूर्च्छा आ गई। होश गुम होने पर दुःख की अनुभूति भी कैसे हो सकती है ? रमा

वेहोश होकर दुःख मुक्त हुई और उसकी वह अवस्था देखकर माधव के माथे में आग भड़क उठी। क्रोध-रूपी उस अग्नि में माधव का दुःख भी जलकर राख हो गया। रमा वेहोशी के कारण दुःख-मुक्त थी, तो माधव क्रोधाग्नि से जलकर दुःख-मुक्त। किन्तु शंकर? उस वालक का क्या हुआ? चमेली की वेल पर कुल्हाड़ी का आघात होने पर भी एकाध सुन्दर फूल जैसे उस वेल पर लटकता रह जाता है, उसी तरह वेहोश रमा के शरीर के साथ ही वह अवोध वालक चिपट रहा था।

गोरे अधिकारी की भौंहें क्रोध से तन गई थीं। सामने लाये गए माधव से उसने पूछा, "पापी! वता तेरा नाम!" क्रोध से भरकर माधव ने उत्तर दिया, "मेरा नाम पूछने का साहस करने वाला तू आखिर है कौन?"

उस प्रश्न के साथ ही किसी नाग ने मानो फन उठाया हो। उस गोरे ने एक क्रॉस ऊँचा उठाया और पूछा, "अरे मूर्ख! मैं हूँ एक नम्र सेवक! देवदूत भी जिस प्रभु का चरण-यश गाते हैं, उसका एक विनम्र सेवक।" और उस क्रॉस पर परमेश्वर के प्रिय पुत्र की—उस दयाधन ईसामसीह की—पवित्र प्रतिमा को चूम कर उसने रोव से कहा, "उस प्रभु के कार्य की दीक्षा लेकर उसके शुभ चरणों में सर्वस्व समर्पण करने वाला विनम्र सेवक हूँ मैं, अंतुनिया। सव पाखंड का खंडन कर उस प्रभु का पवित्र सन्देश त्रिखंड में पहुँचाने की धर्मगुरु पोप की आज्ञा मेरे एक हाथ में है और इस दूसरे हाथ में पुर्तगाली राजाज्ञा खड्ग मैंने उठाया है। वोल, उस आज्ञा का भंग करके धर्म के नाम पर पाखंड करने की दुर्वुद्धि आज तुममें कैसे हुई?"

"मुझ पर यों ही आरोप क्यों लगा रहे हो?" माधव स्पष्टीकरण करने लगा, "धर्माज्ञा अथवा राजाज्ञा का मैंने उल्लंघन नहीं किया और न ही कोई पाखंड ही रचा है······।"

"सव झूठ है।" स्पष्टीकरण पूर्ण होने से पहले ही अंतुनिया चिल्लाया। और वहाँ इकट्ठे हुए ग्रामीणों के प्रमुखों से कहने लगा, "अरे पतितो, वोलो! 'जो कोई हिन्दुओं के धर्म-कृत्य खुलेआम करेगा, वह पापी और उसके पाखंडी सहायक हमारे ईसाई धर्म के और हमारे राज्य के शत्रु माने जायेंगे', यह घोषणा और उस अपराध

के लिए उन्हें जीवित जलाने की हमारी राजाज्ञा आपने सुनी है या नहीं ? ऐसे पाखंडी पापियों की दहनाग्नि की लपटें गगन में उठती हुई आपने प्रतिदिन देखी हैं या नहीं ?"

भयकंपित होने के कारण चुप बैठे हुए ग्रामीणों के 'हाँ' या 'न' कहने से पूर्व ही वह कुपित अन्तुनिया फिर से चिल्लाकर बोला, "हरामखोरो ! तुम्हारे भाई-बहिन और बाल-बच्चे अग्नि में प्रत्यक्ष जलाये बिना तुम्हें आज्ञाओं का कैसे पता लगेगा ?"

इस प्रकार गरज कर उस धर्मान्ध ने अपने हाथ का वह क्रॉस नीचे रखा और हंटर उठाकर माधव की ओर बढ़ कर बोला, "बोल ! तूने आज खुलेआम पाठ-पूजा नहीं की ? बता, नहीं तो तेरी आज खाल उधेड़ दूंगा।" और हंटर के प्रत्येक प्रहार के साथ अपनी आवाज़ ऊँची करता हुआ बार-बार कहने लगा, "बोल, बोल !" उसके चढ़ते स्वर ने हंटर के प्रहारों के साथ मानो क्रूर ताल ही ग्रहण कर ली थी। हाथ-पाँव से, सिर से और शरीर पर स्थान-स्थान से खून के मानो फव्वारे उठने लगे, किन्तु माधव का धीरज छूटा नहीं। वेदना के मारे उसके मुंह से आह तक न निकली। धीर-गम्भीर शब्दों में वह बोला, "पाठ-पूजा आदि धर्म-कृत्य तो करने ही चाहिए। किन्तु इस जन्म-दिन के समारोह को तो कोई धार्मिक कृत्य नहीं कहता और इन लोगों के साथ पुत्र-जन्मोत्सव के निमित्त मैंने कोई भी धार्मिक कृत्य नहीं किया है।"

ऐसा खरा-खरा जवाब माधव बार-बार दे रहा था तो हंटर के प्रहारों से उसके शरीर से खून की धारायें बह रही थीं। वहाँ शस्त्र-धारी पुर्तगाली थे केवल तीस और ग्रामीण तीन सौ से भी अधिक की संख्या में, तो भी हंटर के प्रत्येक प्रहार के साथ बेगुनाह खून बह रहा था। यह देख सभी ग्रामीण दुःख से बेचैन हो रहे थे। किन्तु उसका प्रतिरोध करने की किसी में भी हिम्मत न थी। अनेक होते हुए भी उस एक नर-राक्षस का हाथ पकड़ने का साहस वे नहीं कर सके।

हंटर चल रहा था। मुंह पर, पीठ पर, एक के बाद एक घाव हो रहे थे, पर उस गोरे को संतोष नहीं था। उल्टी प्रत्येक घाव के साथ

—२

उसकी क्रूरता बढ़ती ही जा रही थी। उस दयावान यीशु के क्रॉस पर लगी प्रतिमा को उसका यह भक्त वेगुनाह खून से स्नान करा रहा था। खून-से लथपथ उस प्रतिमा को जब उसने देखा तो कृत-कृत्य होकर उसने अपना हंटर नीचे रख दिया। अपनी जेब के रूमाल से यीशु की रक्त-रंजित प्रतिमा को उसने साफ किया और भक्ति-भाव से एक बार उसको चूमकर ग्रामवासियों को कहने लगा, "पापियो ! अब तो यह स्वीकार करो कि यीशु का यश छोड़कर जो है वह असत्य और पाखंड है। अगर ऐसा करोगे तो मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारे पापों को क्षमा करने के लिए प्रभु और पोप के पास हम आग्रहपूर्वक प्रार्थना करेंगे। अन्यथा, यह ध्यान में रखो, ईसामसीह की कसम खाकर कहता हूँ कि एक भी हिन्दू यहाँ से ज़िन्दा नहीं जा सकेगा।"

अँधेरे की कालिमा सृष्टि को अधिकाधिक ढकती जा रही थी। उस अँधेरे में वह क्रूर-कर्मा अब बोलता हुआ दिखाई भी नहीं दे रहा था। उसकी वाणी-मात्र सुनाई दे रही थी, मानो तमोग्रस्त सृष्टि की जिह्वा ही बोल रही हो।

अँधेरे का लाभ उठाकर दुःख से विह्वल उन ग्रामीणों में भी अब कुलबुलाहट शुरू हुई, किन्तु बारी-बारी भागने के इरादे से ही। पर यह बात ध्यान में आते ही अंतुनिया ने उसी क्षण अपने सैनिकों को उन्हें घेरा डालकर रोकने का हुक्म दे दिया। रक्त से लथपथ माधव जहाँ वेहोश पड़ा था, उस चबूतरे पर पहरे के लिए एक सैनिक की योजना भी उसने की। इस तरह सबको रोक रखने का बन्दोबस्त करके वह स्वयं कुछ और लोगों को पकड़ लाने के लिए चला गया।

अचानक उस अँधेरे में सैनिकों के घेरे में घुसकर कोई दो-तीन हिम्मती जवान चबूतरे की ओर तीर की तरह बढ़े और जैसे गरुड़ साँप पर झपटता है, उसी प्रकार अकेले पहरेदार सैनिक पर झपटकर उन्होंने उसकी गरदन दबोच ली। क्षण-भर में वह सैनिक ज़मीन पर वेहोश हो गिर पड़ा और वे वीर एकदम माधव, उसके पुत्र और पत्नी, तीनों को पीठ पर उठाकर भाग निकले।

थोड़े ही समय में अन्तुनिया गाँव के कुछ अन्य प्रमुख व्यक्तियों को पकड़कर और एक जलता हुआ दीपक लेकर चबूतरे पर लौटा। दिए

के प्रकाश में उसने क्या देखा ! बेहोश माधव के स्थान पर सैनिक बेहोश पड़ा है और माधव-समेत सारे बन्दी गायब हैं। "धोखा, धोखा ! अरे देखते क्या हो ? पकड़ो, दौड़ो !" अन्तुनिया क्रोध से चिढ़कर चिल्लाने लगा। जो कोई सामने आया उसको डाँटने लगा। क्या हुआ है, यह समझने में लोगों को देरी न लगी। धीरे-धीरे उनके मन पर भय का प्रभाव भी कम होने लगा और बालू का बाँध तोड़कर जैसे पानी का प्रभाव वह निकलता है, उसी प्रकार सैनिकों का घेरा तोड़कर वह जन-प्रवाह देखते-ही-देखते घरों की ओर बढ़ने लगा। अन्तुनिया ने स्थिति पहचान ली। पूँछ पर आघात हुए साँप की तरह मन में बदले का भाव रखकर वह पीछे हटा। गाँव के जिन प्रमुखों को पकड़कर लाया था, उन्हें बाँध कर अपने सैनिकों के साथ वह चौकी में आश्रय के लिए चला गया।

शत्रु-सैनिक थे ही कितने ? केवल तीस। उनके रहम पर उन ग्राम-प्रमुखों को छोड़कर वे तीन सौ ग्रामीण जान बचाकर भाग गए।

वह काली रात ! उस भीषण रात्रि में उन बंदियों को घोर यातनाएँ दी जाती रहीं। हंटरों की मार और एक हंटर के टूटने के बाद दूसरा, इस प्रकार प्रहार जारी रहे। कई हंटर टूट गये, किन्तु उन अत्याचारियों का मारना नहीं रुका। हंटर चल रहे थे, हृदय-विदारक चीत्कारें निकल रही थीं और खून के फव्वारे उठ रहे थे।

ऐसी वह भीषण रात्रि। ऐसी वह क्रूर और काली रात्रि। ऐसी वह हिंसक रात्रि। वे अभागी आर्त-चीत्कारें और उन हिंसक नर-पशुओं की गर्जनायें। रक्त से लथ-पथ वह रात्रि। नहीं, नहीं, एक चिढ़ी हुई जहरीली नागिन ही मानो उन ग्रामवासियों को डस रही थी।

हे प्रभु ! अभी-अभी सायंकाल में नित्य की भाँति तुम्हारा स्मरण इन लोगों ने किया और उसके तुरन्त बाद ही इनके भाग्य में यह भयंकर रात्रि आई। क्या भक्तिभाव से तुम्हारी प्रार्थना करना भी पाप है ? अपराध है ?

: ३ :

गाँव के कुछ ही दूर बने मठ के चारों ओर नीरव शान्ति बस रही थी—तृप्त और शान्त। मठ में कोमल गीतों का शीतल स्रोत बह रहा

था। उस सौम्य रात्रि में उस शान्त निर्मल चाँदनी से यह गीत-धारा मानो एकरूप हो गयी थी और उस स्निग्ध वातावरण में बैठा हुआ अमृत-हृदय एक ऋषि अपनी अर्चना से प्रभु को रिझाकर इस प्रकार चमक रहा था जैसे चन्द्र को पाकर चन्द्रकान्त-मणि अपनी किरणें फैला रही हो।

ऐसे ही एक दिन विचरण करते हुए यह साधु महाराज मठ में आकर रहने लगे थे। आज भी रह रहे हैं और भविष्य में? कुछ कैसे कहा जा सकता है? बाबा के मन में क्या चल रहा है, अन्य तो किसी को ज्ञात ही नहीं, और शायद स्वयं उसको भी पता है या नहीं, यह कहना भी कठिन होगा।

साधु महाराज स्वयं किसी को नहीं बुलाते! किन्तु खिले हुए कमल की ओर क्या भौंरे अपने-आप दौड़े नहीं जाते? वैसे ही उस साधु को लोग खोजते हुए उसके पास पहुँच जाया करते हैं।

भार्गव ग्राम की वह रमा-माधव काण्ड के कारण भीषण बनी रात्रि उस मठ में प्रवेश करते ही, सन्त-समागम से मानो कैसी सौम्य, प्रसन्न और शान्त हो गई थी! उस साधु की गीत-माधुरी से तथा चाँदनी से वह एकरूप हो गई थी। भगवान् शंकर की अर्चना करने पर भी मन को सन्तोष न होने पर वह साधु उसी आरती को ही बार-बार दोहरा रहा था।

गाते-गाते शांत होकर वह हाथ जोड़कर बैठ गया। बीच में ही कभी भक्ति के उन्माद से वह ऐसे हँसता मानो शंकर का मूर्तिमंत भोलापन ही हो।

एकाएक किसी की कराहती हुई पुकार सुनाई दी, "हे महात्माजी! हे साधुजी!" शिवालय में अशुभ का कभी प्रवेश नहीं होगा, इस विश्वास से सदा निश्चिन्त रहने वाला वह साधु उस पुकार को सुनकर कुछ चमक-सा गया।

अधखुले नेत्रों से झाँककर वह बड़ी करुणा-भरी वाणी से बोला, "अरे-रे, कौन है तू? क्या हुआ तुझको? आ, आगे आ और बोल!"

पूरी आँखें खोलने पर उसने देखा कि काँपती पुष्पलता-सी लज्जा-कम्पित एक रमणी एक मुरझाये फूल-से बच्चे को गोद में उठाये सामने

खड़ी है और उसके पीछे बलवान, निडर किन्तु नम्र तीन वीर खड़े हैं। मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा, यह सोचकर वह क्षण-भर के लिए अवाक् रह गया। आये हुए लोगों में से भी कोई कुछ नहीं बोला। अन्त में उन तीनों में से जो प्रमुख वीर था, वह कुछ कदम आगे बढ़ा और शत्रु को भयकम्पित करने वाले हाथों की नम्रता से झुककर उस असहनीय शांतता को भंग करते हुए स्पष्ट वाणी से बोला, "महाराज! मेरा नम्र प्रणाम स्वीकार हो! महात्माजी! आपके वंदनीय चरणों को मेरा सहस्रों बार प्रणाम। अज्ञात आश्रमों में आप-जैसे तपस्वी द्रष्टाओं ने ही वेदोपवेदों का गहन ज्ञान, तप के पुण्य फल, योग-समाधि की दिव्य अनुभूति और अपनी विरक्तावस्था में रति के प्रबल बल को अपनी सूक्ष्म-बुद्धि द्वारा पहचान, अत्यन्त धीरजपूर्वक उनकी (ज्ञान, तपादि की) उपासना कर मानव के अन्दर का सुप्त ईश्वरत्व प्रकट किया है। सचमुच ही ऐसे ऋषिवरों के हम पर अनंत उपकार हैं। उनके चरण-स्पर्श से ही यह आर्यभूमि देवभूमि बन गयी है। स्वयं दैवी सम्पत्ति से विभूषित होकर भी ये महेशतुल्य ऋषि सर्वसामान्य मानवों की तरह विचरते हैं। अपने पास आने वालों को प्रकृत भाषारूपी प्याऊ से वे अत्यन्त प्रेम से स्वर्गीय ज्ञानामृत पिलाते हैं। इस प्रकार केवल लोक-कल्याण के हेतु अज्ञातवासी की तरह संसार में रहकर, रात-दिन इस पृथ्वी का उद्धार कर रहे हैं, और इतना कुछ करके भी नाम और प्रसिद्धि की किंचित् भी चाह उन्हें नहीं रहती। किसी के नाम पूछने पर भी नहीं बताते। कितना बड़प्पन है उनका। लोगों के दुःख में समरस होकर, स्वतः के अश्रुजल का चिंतन कर ये ऋषिवर उनके तापत्रय शान्त करते हैं। सचमुच ही इन देवता-स्वरूप पुरुषों के उपकार की कोई तुलना ही नहीं है। देखिए, आज असीरिया, यूनान, मिश्र, रोम आदि राष्ट्र और यवन, पारसी, शक, हूण आदि जातियाँ कालरूपी समुद्र के तूफानों में नष्ट हो गयीं, किन्तु हमारे इस भारतीय राष्ट्र के शरीर-पंजर में अभी भी चेतना है। अभी भी हमारी आर्य-भूमि जीवित है। क्यों? किस कारण? इन्हीं ऋषिवरों, तपोनिधियों के पद-स्पर्श से, उन्हीं की तपश्चर्या के प्रभाव से देह में जैसे प्राण वैसे ही राष्ट्र में ये महर्षि। राष्ट्र-शरीर परकीय आघातों के कारण संवेदना-

शून्य और बधिर हो जाये तो भी उसे निष्प्राण होने से ऋषि ही बचाते हैं। महात्माजी धन्य हैं आप जैसे मुनिवर !" ऐसा कहकर उस वीर ने अभय-याचना करते हुए साधु के चरणों में विनम्र वंदन किया और अपनी कहानी संक्षेप में कही। उस दिन हिरणों के झुण्ड पर एकाएक वाघ ने हिंसक झपट कैसे मारी, वाघ ने माधव को कैसे पकड़ लिया, और इन तीनों ने अपनी शक्ति के बल से उनको कैसे छुड़ाया आदि समाचार विस्तार से वताया। माधव की यह दु:ख-भरी कहानी सुन उस सन्त-हृदय महात्मा को अत्यन्त दु:ख हुआ। पानी जैसे पानी में मिल जाता है, उसी प्रकार वह तपस्वी उन दुखियों के दु:ख से तुरन्त एकरूप हो गया। उसने माधव के ज़ख्मी शरीर की सुखद्-सात्विक औषधियों से सेवा प्रारम्भ की और अपने दिव्य ज्ञान के तात्विक हितोपदेश से उसकी पीड़ित आत्मा को भी उसने सांत्वना दी।

माधव का भी कष्ट अब कुछ कम हो रहा था। रमा के मन में भी सुरक्षा के सम्बन्ध में थोड़ा विश्वास उत्पन्न हुआ और वह बालक शंकर नींद से ऊँघने लगा। उनको छुड़ाकर वीर जवान, साधु से कहने लगा, "मुनिवर ! यहाँ तक तो जो कुछ हुआ, बहुत अच्छा हुआ। आपके अभय देने के कारण हमारा धीरज बहुत बढ़ा है, यह सत्य है। किन्तु देखें प्रभु आगे का कर्तव्य किस तरह निभवाते हैं। उस शिकारी की झपट से इस खरगोश की रक्षा अब कौन करेगा ?"

"वह, शम्भु ही रक्षा करेंगे, बेटा ! वे दयावन शिवशंकर ही रक्षण करेंगे ! उसी पर पूर्ण विश्वास रखो। उसके बिना संसार में कौन किसका रक्षक है ?" साधु महाराज बोले।

यह सुनकर वीराग्रणी ने कहा, "महात्मन् ! आप जो कहते हैं वह तो सब ठीक ही है। उस परमात्मा के अतिरिक्त कौन किसकी रक्षा करेगा, अर्थात् उस प्रभु की ही सारी सत्ता है। किन्तु महाराज ! क्या यह भी उतना ही सत्य नहीं कि उसके बिना कौन किसका भक्षण करता है ? इस सृष्टि में क्या भक्ष्य-भक्षक न्याय भी उसी की सत्ता नहीं है ? सचमुच, यह परमात्मा की माया तर्क से परे है। वही शिकारी को प्रेरणा करता है झपटने के लिए तथा वही खरगोश को बताता है दौड़कर जान बचाने को। इसका कोई क्या अर्थ लगाये ? कहा ही है

कि—'सूक्ष्मोऽहि भगवान् धर्मः परोक्षो दुर्विचारणः'।

अतः 'प्रत्येक्ष्य मार्गेण व्यवहार विधि नयेत्'। इसलिए साधु महाराज, अब रात में ही अगर कोई उपाय न किया गया तो यह ब्राह्मण कल ज़िन्दा जला दिया जाएगा और वे पुर्तगाली पशु इस सुलक्षणी, बालक तथा इस सती को जलाने में भी दया नहीं करेंगे। इनके भाग्य में तो धर्म-भ्रष्ट गुलामों का जीवन आएगा। उसका क्या करें? इसलिए तीनों को ही रातोंरात किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाने के सिवा मुझे तो कोई अन्य उपाय नहीं सूझता। रण-धुरंधर बाजीराव के कृपाण-रक्षित राज्य के बिना हिन्दुओं के लिए अन्य सुरक्षित स्थान कौन-सा है? इस कारण हम तुरन्त ही घोड़े मँगाकर इन तीनों को उन पर बिठला, अत्यन्त तीव्रगति से इन्हें एक ही दौड़ में बाजीराव के राज्य में पहुँचा देते हैं, जहाँ राष्ट्रशक्ति भवानी का भगवा झंडा फहरा रहा है। साधु महाराज! केवल विश्वास और भक्ति से इनकी रक्षा होगी, ऐसा तो मुझे नहीं लगता। अकर्मण्य भक्ति से भगवान भी कैसे मिल सकते हैं? सोमनाथ मन्दिर के भक्त क्या कम थे? फिर किसी अनाथ की तरह उसका विध्वंस क्यों हुआ भला!"

"नहीं, नहीं" साधु महाराज ने समझाया, "अरे बावले! यह तू क्या कह रहा है? अरे क्या प्रत्यक्ष मृत्यु भी उस मारकंडेय का कुछ बिगाड़ सकती है? बेटा, शंका से द्वेष बढ़ता है तथा श्रद्धा से दया बढ़ती है। शत्रु की तो बात ही क्या, पत्थर भी भक्ति से पसीजता है। देख, कल अन्तुनिया के यहाँ आने पर उसको सब सत्य-सत्य बताते ही उसका दिल पसीजे बिन नहीं रहेगा। तू शस्त्र की बात करना चाहता है, किन्तु याद रख, शस्त्र की भाषा का उत्तर द्वेष से मिलता है और सत्य का दया से।"

यह सारा संवाद रमा सुन रही थी। उससे रहा न गया और वह एकाएक बीच में ही बोली, "भगवन्! हमारी भाषा क्या सत्य की नहीं थी? क्या सत्य के बिना अन्य कुछ भी हमने कहा था? पुत्र-जन्मोत्सव हमने किया तो कौन-सा पाप किया? और वह सत्य जब कहने लगे तो दया तो दूर रही,······हाय रे भाग्य! गाय को कभी कोई इस तरह से नहीं घसीटता, जैसे मुझे उन पशुओं ने घसीटा। मेरे वे

प्राण ले लेते तो शायद इतना दुःख न होता। किन्तु हाय ! इन पर......" माधव की ओर संकेत करते हुए वह बोली, "प्राणों से भी अधिक प्रिय मेरे पति पर कैसा भीषण आघात !"

रमा ने अभी तक प्रयत्नपूर्वक जिस शोक-प्रवाह को रोक रखा था वह धैर्य तथा लोक-लज्जा का बाँध तोड़कर वह निकला। अपने ही आँसुओं की बाढ़ से वह सती केले के पेड़ के समान उखड़कर गिर पड़ी। और गला फाड़ कर अपने प्रिय पति को पुकारती हुई उसकी गोद में पड़कर घोर विलाप करने लगी।

तब वह साधु और वह वीर दोनों ही सांत्वना देने का प्रयत्न करने लगे, "बेटी, अपने इस बच्चे का तो ध्यान कर।" आदि वाक्य कहकर समझाने लगे।

झुलसी बेल पर घट-सिंचन के समान शोक-ताप से सूखी जीभ को आँसुओं से सींचती हुई अत्यन्त दीन वाणी से रमा बोली, "कृपया आप इतने कठोर न हों। मुझ पर दया कीजिये; उस अन्तुनिया के—उस साँप के बिल में मुझे फिर मत धकेलिये।"

"बेटी ! बेटी !" उसको सहलाते हुए सौम्य स्मित और आर्द्र वाणी से वह ऋषि बोला, "बेटी, आत्मा तो सर्वव्यापी है ना ! देख प्रेम के बल से साँप भी वश में हो जाता है, फिर अन्तुनिया की क्या बात ?" ऐसा कहकर मधुर आवाज़ में पुकारा, वासुकि ! बेटा वासुकि ! !"

तुरन्त फन डुलाते हुए बिल से एक साँप बाहर आया। "आ, आ" साधु उस साँप को संकेत करते हुए बोला, "देख तुझे भूख लगी होगी। किन्तु यह देख आज तेरे घर में अतिथि आये हैं। मैं ज़रा उनकी सेवा में था। इसलिए पूजा हो चुकने पर भी भोग-चढ़ाई दूध की कटोरी तुझे देनी रह गई।"

जब वह साधु इस प्रकार हँसकर कह रहा था तो वह साँप सरसराहट करता हुआ आगे बढ़ा और साधु के पैर में लिपट गया। विस्मित अतिथियों की ओर देखकर साधु ने हँसते हुए दूध की कटोरी उस भुजंग के सामने रख दी।

वह नाग अपनी जीभ लपलपा रहा था। बार-बार फन ऊँचा

करता और फिर दूध पीने लगता। इस तरह उसकी आनन्द-क्रीड़ा चल रही थी। दुःख ही मानो सुख पी रहा हो। दूध पीकर तृप्त होने के बाद वह नाग शिवलिंग से लिपटकर फन उठाकर डोलने लगा। "वाह, वाह!" साधु वह दृश्य देखकर हँसकर बोला, "आयुरूपी दुग्ध-पात्र खाली कर मृत्यु मानो स्वयं मृत्युंजय के सिर पर छत्र धारण कर रही हो, अथवा साँप न होकर यह भगवान के हलाहल पीते समय प्याले से झरने वाली दाहक विषधार ही हो।"

उस दृश्य से उस मुनि को केवल काव्य का ही स्फुरण नहीं हुआ, अपितु वह गाने भी लगा।

गाते-गाते वह शंकर-भक्त मुनि मानो समाधिस्थ हो गया। हँसने लगा और हँसते-हँसते बोला, "अहा! वाह, शंकर जी वाह! मृत्युंजय वाह-वाह!" जैसे-जैसे भावावेश का संचार उसमें होने लगा, वैसे-वैसे उसका आत्म-तेज विकसित होने लगा। उस तेज प्रभाव से उपस्थित मंडली पर एक अद्‌भुत प्रभाव पड़ने लगा। साधु के भगवान के स्तुति-गायन में अपनी सहमति दिखाने के लिए ही मानो वह भुजंग अपना फन बार-बार डुला रहा था।

इस दृश्य के परिणामस्वरूप रमा को निर्भयता का आभास हुआ। माधव को लगा कि उसके शरीर पर किसी ने शीतल औषध ही उँडेल दी है। बालक शंकर नींद में ही मीठे-मीठे सपने देखने लगा। किन्तु उनको संकट-मुक्त करने वाले वीर पुरुष को यह सब दिवा-स्वप्न जैसा लग रहा था।

एकाएक दूर कहीं से शोर सुनायी दिया। आने वाले संकटों का पदरव कान में पड़ रहा था। वीराग्रणी तत्काल सावधान होकर साधु को कहने लगा, "सुनो, वह आवाज़ सुनो! निश्चित ही शत्रु इनकी खोज हेतु आ रहे हैं। साधु महाराज, आपके आत्म-बल पर मुझे भी विश्वास है, किन्तु शरीर-बल के समान आत्म-बल की भी कोई मर्यादा तो होगी ही। अपने आत्मबल से एक साँप को वश में कर लिया, किन्तु उससे भी सौगुने भयंकर सहस्रों नर-सर्पों को आप वश में कर सकेंगे, इस बात में मुझे सन्देह है। बल्कि यह होगा, ऐसा मान लेने पर भी तीन निरपराध व्यक्तियों का निरर्थक बलि चढ़ाना आपके लिए क्या

कीर्तिवर्धक होगा ? इसलिए महाराज, इन जीवों का भार आप उठाना चाहें तो बेशक उठाइये, लेकिन मैं तो इस प्रकार धोखा खाने को तैयार नहीं हूँ।"

साधु मुस्कराकर बोला, "बेटा ! इन तीन ही जीवों का नहीं अपितु विश्व के जीव-मात्र का भार अकेले भगवान शंकर के सिर पर है। उसी में ही दृढ़ श्रद्धा का भाव रखना चाहिए।"

"साधु महाराज !" वीर ने इस पर कहा, "भक्ति के सामने सारे भौतिक उपाय यदि निरर्थक हैं तो फिर माधव के ज़ख्मों पर जड़ी-बूटी लगाने की क्या आवश्यकता थी।"

किन्तु उस चुभने वाले प्रश्न से भी साधु की प्रसन्नता विचलित नहीं हुई। मंद हास्य करते हुए वह बोला, "बेटा, उस बूटी के द्वारा शंकर की ही कृपा उसके शरीर में प्रविष्ट हुई। उसी प्रकार वह शम्भु अन्तुनिया के हृदय में प्रेम की बूटी निचोड़े बिना नहीं रहेंगे।"

यह सुनकर वह वीर रमा-माधव की ओर घूमकर कहने लगा, "आपको साधु महाराज का कहना अगर ठीक लगता हो तो मैं फिर आपसे अनुमति चाहूँगा। मुझे आप छुट्टी दें। आपका सदैव भला हो। महाराज के चरणों की सेवा करने का आपको सदा अवसर मिले…।"

वह इस प्रकार बोल ही रहा था कि इतने में मठ का दरवाज़ा किसी ने खटखटाया और अन्तुनिया का एक गोरा सैनिक प्रांगण में प्रविष्ट हुआ।

उसे देखते ही वायु से कम्पायमान होने वाले केले की तरह रमा का शरीर काँप उठा। रक्षक वीरों तथा साधु की ओर देखकर वह कहने लगी, "महाराज, रक्षा कीजिए। हमें इस प्रकार निराधार न छोड़िये। रक्षा कीजिए।"

"शांत हो बेटी, धीरज धर।" गम्भीर स्वर में साधु बोला और उन्हें वैसा ही छोड़कर आये हुओं का स्वागत करने के लिए वह आँगन की ओर बढ़ा। किन्तु वह वीर जल्दी से उन तीनों को निकट के कमरे में ले गया और शीघ्र ही वहाँ का दीपक बुझा दिया।

उस गोरे सैनिक को अन्तुनिया समझकर वह महात्मा उसे कहने , "आ बेटा, अन्तुनिया आ।"

अन्तुनिया का नाम साधु के मुख से सुनकर वह गोरा सैनिक कुछ चौंक गया। माधव का सारा वृत्त इसे निश्चित ही पता लग गया होगा, ऐसा वह मन-ही-मन सोचने लगा। "मुझे अगर यह अन्तुनिया समझता है तो मैं भी अपने-आपको वैसा ही प्रकट क्यों न करूँ? देखें तो, यह क्या कहता है, ऐसा सोचकर वह शुद्ध मराठी में बोला, "साधु महाराज, आपके अन्तर्ज्ञान की कीर्ति लोगों से जो सुनी थी वह ठीक ही थी। ओहो, देखते ही तो आपने मेरा नाम बता दिया।"

"नहीं, नहीं। बेटा, दूसरे किसी ने तुम्हारा नाम मुझे बताया है। सच्चा ज्ञाता तो शम्भु ही एकमात्र है। आ बेटा, शम्भु के दर्शन कर ले। आ, अन्दर आ! यह देख भगवान् श्री शंकर की शुभ-कारक मूर्ति! आ बेटा, महेश्वर को वंदन कर।"

लेकिन उस गोरे को वह शिवलिंग देखकर बहुत हँसी आयी। क्योंकि उसी समय एक चूहा उस शिवलिंग पर चढ़ा बैठा था, "महाराज," वह पुर्तगाली सिपाही बोला, "आपके जिस महादेव को इस साधारण चूहे का निवारण करना भी नहीं आता, उसकी सेवा करने से हाथ में क्या आयेगा?"

इस पर साधु बोला, "वाह रे पगले, अपने पूज्य पिता का चित्र अगर कोई काट दे तो क्या पिता कट जाता है? बेटा, आखिर चित्र तो चित्र ही है और पिता पिता है। और सच पूछो तो परम पिता को अपने प्रिय प्राणी का निवारण भी क्यों करना चाहिए? वह ज़बरदस्ती शरीर पर थोड़े आते हैं। असीम प्रेम के कारण ही वे आते हैं। सुनो बेटा, यह गीत सुनो।" साधु ने गीत गाना शुरू किया।

और गीत समाप्त होते ही साधु बोला, "देख अन्तुनी! संसार में जीवात्माओं की एकता न समझने के कारण ही हम व्यर्थ अज्ञान में पड़े हैं। यह देख, जैसे तेरे अन्दर जीव है, वैसे दूसरे के अन्दर भी है, यह ध्यान में रख। यही प्रेम का सरल मंत्र है। इस प्रेम-मंत्र से ही जीवन में स्वर्गीय रस उत्पन्न होता है। बेटा अन्तुनी, जलता हुआ घर क्या हम तुरन्त ही नहीं बुझाते। इसलिए तुम्हारा हृदय द्वेषाग्नि का भक्ष्य बन गया हो तो फिर द्वेष की आग तुम्हें बुझानी चाहिए, पश्चात्ताप के जल से वह आग तू बुझा ले। अरे भाई, तू दूसरों को क्षमा कर

और फ़िर देख कि वह जगत-जनक कृपालु परमेश्वर तुझे भी उसी क्षण क्षमा कर देगा।"

पुर्तगाली अपनी गोरी गरदन हिलाकर बोला, "भगवन्, आप जो कुछ कह रहे हैं वह तो सत्य ही है। हमारे देव-पुत्र यीशु ने यही तो सत्-संदेश अपने पुत्रों को दिया है। हे महात्मन्! आप जैसे संत कहीं भी हों, वे उस यीशु के ही अनुयायी हैं। आपकी ऐसी कीर्ति सुनकर ही तो महाराज मैं आपको मिलने चला आया। आपके दर्शनों से मेरे अन्त:करण में आपके बारे में कितनी भक्ति उत्पन्न हुई, कैसे कहूँ? हे मुनिवर, केवल अन्तर्ज्ञान से अगर आप मेरा नाम जान सके, तो मेरे कर्म भी आपसे अज्ञात कैसे रह सकते हैं?

"हे सद्गुरु! सचमुच ही अब मुझे अपने कर्मों का पश्चात्ताप हो रहा है। हाय, हाय! कितना घोर पाप मुझसे हुआ! सचमुच, उस माधव से क्षमा माँगने के लिए मेरा मन बेचैन हो रहा है। माधव कहाँ है, यह मुझे मालूम हो जाए और वह मुझे क्षमा करे, तभी मेरे मन को शांति मिल सकती है, तभी मेरा मन सुखी होगा।"

उस गोरे के वे शब्द सुनकर साधु को बहुत ही अच्छा लगा। वह किंचित् गद्गद होकर बोला, "अन्तुनी! तुम्हारा कल्याण हो। तेरे सम्बन्ध से मैंने मन-ही-मन जो विश्वास किया था, वह तुमने अपनी दयाशीलता से सार्थक कर दिया। धन्य है तू!"

"यह सब आपकी ही कृपा है, महाराज! आपका प्रभाव ही कुछ अनोखा है। आपकी कृपा से कुपात्र भी सुपात्र हो जाते हैं। भगवन्! आप तो साँपों को भी प्रेमी-हृदय बना लेते हैं, मैं तो आखिर मनुष्य ही हूँ।"

"भाई अन्तुनिया! नागों के हृदय में भी क्या दया नहीं होती? और हम मनुष्यों के हृदय में क्या कम विष रहता है? अरे, हम ही पहले साँप की पूँछ पर पैर रखते हैं और उस पैर को अगर उसने डस लिया तो उसको दोष देते हैं। भाई······

'एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थित:।'

"प्राणिमात्र में एक ही तो जीवात्मा रहता है और इसीलिये साँप प्रेम के वश हो जाते हैं और मनुष्य भी द्वेष-रूपी विष के शिकार

वन जाते हैं। क्या तुम्हें इसमें कोई अतिशयोक्ति दिखाई देती है ? अरे यहाँ तो भूतनाथ शंकर का प्रसाद पाने के लिए साँप भी सदा प्रतीक्षा करते रहते हैं। यह वासुकि तो अपने सुख-स्पर्श से भगवान के शरीर को दवाता है। इसके अतिरिक्त किसी नौकर की भाँति शम्भु के मस्तक पर फन फैला कर छत्र धारण करता है।"

इस पर वह गोरा सनिक हँसकर वोला, "अजी महाराज, ये साँप केवल शिवलिंग पर ही फन फैलाते हों, ऐसा थोड़ा है ! खाते-खाते जव थक जाते हैं तो पेट में पहुँचे हुए भक्ष्य को ठीक पचाने के लिये पेड़ों को अथवा खम्भों को लिपट कर क्या फन उठाकर डोलते नहीं हैं ?"

"अरे वेटा !" हँसकर साधु ने कहा, "तेरा अभी विश्वास नहीं जम पा रहा है। किन्तु तू वहुत क्रूर है, ऐसी तेरे वारे में जो अफवाह है, वह तूने पाश्चात्ताप से क्या झूठी नहीं सिद्ध की ? और ज्यों-ज्यों तेरी हृदय-शुद्धि होती जायेगी कि—'एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थित:' यह वात सत्य है। इसलिए तू निरपराध लोगों को पीड़ा देना छोड़कर हृदय-शुद्धि करने वाले प्रेम-मन्त्र का जाप प्रारम्भ कर।"

"मंजूर, साधु महाराज ! एकदम मंजूर।" कपट-भाव से वह गोरा पुर्तगाली वोला, "महाराज ! मेरे क्रूर कर्मों के लिए मुझे क्षमा कीजिए और कृपा करके माधव को तुरन्त वुलवाइए। महाराज, मैं उसके चरणों पर लोट-पोट हो जाऊँगा और वह जो द्रव्य-दंड देगा, उसको सहर्ष स्वीकार करते हुए सवको मुक्त कर तत्काल ससैन्य लौट जाऊँगा।"

गोरे के ये उद्‌गार सुनकर साधु ने विजयी भाव से उस वीराग्रणी की ओर नज़र डाली। उसने समझा कि भेड़िये को हिरन के सामने नम्र वना देने वाली आत्म-शक्ति का यह चमत्कार देखकर वह वीर पूर्णत: प्रभावित हो गया होगा। किन्तु दिखाई तो विलकुल उल्टा दिया। वह वीर मानो चिन्ता तथा उद्विग्नता की प्रत्यक्ष मूर्ति ही वना हुआ साधु को दिखा। किन्तु उस वीर को अभी तक ज़रा भी विश्राम न मिलने के कारण वह उद्विग्न दिखाई दे रहा है, ऐसा ही अर्थ साधु ने उसके चेहरे से लगाया। वाकी मण्डली विश्राम के लिए

अन्दर के कमरे में गई होगी, ऐसा भी अनुमान किया।

"माधव! बेटा ज़रा बाहर तो आ।" वात्सल्यरस मानो लबालब भरा हो, ऐसे मधुर स्वर में उसने पुकारा। इतना ही नहीं अपितु स्वयं माधव को अपने हाथ का सहारा देकर बाहर ले आया। माधव को देखते ही उस गोरे ने उसके पैरों पर गिरकर लोट-पोट होना शुरू कर दिया और कहा, "मालिक, मुझसे आपके प्रति घोर अपराध हुआ है। उसके लिए आप मुझे क्षमा करें।"

माधव ने बेचैन होकर कहा, "क्षमा! मैं क्या क्षमा कर सकता हूँ? बिना जल का बादल और बिना धन का खजाना, यह जैसी विडम्बना है वैसी ही दंड-शक्ति के बिना क्षमा भी विडम्बना है। तथापि आपके मन को सचमुच ही पश्चात्ताप हुआ हो, तो मेरे मित्रों को कष्ट देना बन्द करें, यही मेरी प्रार्थना है।"

"अजी, आप अब बिल्कुल निश्चिन्त रहें।" गोरा सैनिक बनावटी ढंग से कह रहा था। अपनी पत्नी तथा बच्चे को भी यहाँ बुलाइए, उनसे भी क्षमा-याचना कर मैं अपने पाप का प्रक्षालन कर लूँ। आप सब जितना जुर्माना मुझे देने के लिए कहेंगे, वह भी देने को मैं तैयार हूँ।"

इस पर माधव चुप रहा। उस वीर ने भी कुछ नहीं कहा। लेकिन साधु में बहुत उत्साह का संचार हुआ। बड़े उत्साह से उसने आवाज़ लगाई, "आ बेटी, चल तू भी बाहर आ।"

रमा भी साधु के आग्रह पर बाहर आई। उसे सम्बोधित कर वह पुर्तगाली कहने लगा—"हे भगिनी, बुद्धिमान पुरुष देह-दण्ड के योग्य मनुष्य को पश्चात्ताप से अधिक सज़ा नहीं देते। फिर तू तो कोमल हृदय वाली स्त्री है, इसलिए तू, इस पापी को क्षमा कर देगी, इसमें मुझे संदेह नहीं है। आप दोनों ही अब मुझे क्षमा कर दें। और अपनी थोड़ी सेवा करवा के पाप धोने का अवसर मुझे दें। चलो, मैं ही आपको घर पहुँचाए देता हूँ। चलो, इसी क्षण मेरे साथ चल पड़ो।"

उस गोरे का यह कहना सुनकर उस वीर से चुप न रहा गया। वह आग्रहपूर्वक बोला, "साधु महाराज, अब तक तो जो हुआ सो हुआ, किन्तु इनको मैं इतनी रात में इसके साथ अकेले जाने नहीं दूंगा।"

उसकी आवेशपूर्ण तथा निश्चयपूर्वक बात को सुनकर उस गोरे को विश्वास हुआ कि माधव को भगा लाने तथा उसे मुक्त कराने में इसी का हाथ होगा। उसी तरह उसने यह भी अनुमान लगा लिया कि अधिक आग्रह करना ठीक नहीं रहेगा। उल्टा, उससे काम बिगड़ सकता है। इसीलिए उसने उस वीर के कथन का तत्काल समर्थन किया। फिर एक बार उसने सबका चरणवंदन किया और बार-बार क्षमा-याचना की। और सबकी पुनः-पुनः प्रशंसा भी की। इस तरह उसे जो-जो देखना-भालना था, देख वह मठ से विदा हुआ।

वह वीर उस गोरे की बनावटी बातों का शिकार नहीं हुआ। उसने अपने दो साथियों में से एक को उस पुर्तगाली की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए कहा और साधु को सावधान करने के लिए बोला, "साधु महाराज, यह अंतुनिया नहीं है। यह तो उसका धूर्त गुप्तचर और एक सैनिक मात्र है। उसने बहुत अच्छा कपट-नाटक खेला। झूठा नाम और झूठा अधिकार बताकर उसने आपको पूरा-पूरा बनाया। महाराज, उसका वह पश्चात्ताप, उसकी वह दया, सब-कुछ पाखंड था महाराज, आप उस पर विश्वास करेंगे, तो सर्वनाश ही होगा, यह निश्चित है।"

"नहीं, नहीं", साधु ने उत्तर दिया, "अरे वीर, ऐसा संशय करना योग्य नहीं है। वह व्यक्ति इस प्रकार कपटी होगा, ऐसा मैं तो नहीं मानता। कैसा अच्छा वह व्यक्ति था! और क्या सेनापति और सैनिक का नाम एक नहीं हो सकता? और यह देखो, यह निर्धन गोसाई को धोखा देकर उसे क्या मिलता? मेरी मनोभावना तो मुझे यही कहती है कि जो कुछ उसने मुझसे कहा है, उसमें ठगी नहीं हो सकती। अपने सरल और दयाशील स्वभाव के अनुरूप ही उसने यह सब-कुछ कहा है।"

उसका यह कथन सुनकर माधव तो दुविधा में पड़ गया। उसकी चित्तवृत्ति अस्थिर हो गई। एक ओर साधु ने उसको मोह लिया था, तो दूसरी ओर वह वीरश्रेष्ठ उसको संसार की वास्तविकता दिखा रहा था। अंत में कोई निश्चय न होने पर उस वीर को सम्बोधित कर बोला, "हे वीर-श्रेष्ठ! आप कौन हैं? कहाँ से आए हैं? आपका पूर्व-परिचय भी मुझसे नहीं है! लगता है मेरा पूर्व-पुण्य ही मेरी रक्षा के

लिए आपकी रूह में दौड़ा आया है। सचमुच आपके उपकार अनंत हैं। मैं अपने एक ही मुख से उन उपकारों का यथार्थ वर्णन कैसे करूँ?"

: ४ :

उफ़! कितनी भयंकर घोर रात्रि! पुर्तगालियों द्वारा पकड़कर लाये गए ग्रामवासियों को चौकी में रात-भर यातनायें दी जा रही थीं। सारा गाँव मानो थर-थर काँप रहा हो! यातनाओं की वेदना असह्य होने पर, कोई जैसा भी अता-पता उगलता, अन्तुनिया उसी ठिकाने पर माधव को खोजकर पकड़ लाने के लिए अपने सिपाहियों को भेज देता।

पहला छापा पड़ा माधव के मित्र ग्राम-सेठ के घर पर। "क्या माधव यहाँ है?" ऐसा पूछ, वे नरपशु उस सेठ के घर घुस गये। माधव जब वहाँ था ही नहीं तो उन्हें मिलता ही कैसे? तब "माधव यहाँ क्यों नहीं है?" यह कहकर सिपाहियों ने उसको पीटना शुरू कर दिया। बेचारा सेठ रोने-चिल्लाने लगा, "भाई, माधव कहाँ है, मुझे भला क्या मालूम?"

"बताता नहीं?" उसे पीटते हुए उन क्रूर सिपाहियों ने कहा, "ठहर, तेरे सामने ही तेरी कन्या को नग्न करने पर तू रास्ते पर आ जायेगा।" यह कहकर उन्होंने भौंकने वाले कुत्ते की तरह उस अबला पर झपट कर, उसे घसीट कर उसके पिता के सम्मुख ही ज़मीन पर पटक दिया।

अरे-रे, वहाँ सैनिक तो केवल तीस ही थे, किन्तु उस भरे गाँव में उनके पाशवी अत्याचारों को रोकने के लिए एक भी नरवीर आगे न आया! कैसा दुर्दैव!

सेठजी ने अपनी आँखें मीच लीं। वह बेचारी लड़की अधमरी अवस्था में शव की तरह ज़मीन पर पड़ी थी। और······

फिन उन नराधमों ने जो घोर पाशवी कृत्य किया वह उस भीषण रात्रि से भी देखा नहीं गया होगा।

डस कर, विषवमन कर साँप जैसे बिल में लौट जाता है, वैसे ही वे तीसों दैत्य अत्याचार करके उसी क्षण वहाँ से लौट गए। सारे गाँव में उन नरपिशाचों ने कैसा आतंक फैला दिया, इसका वर्णन भी कैसे करें? पागल कुत्ता जब काटने लगता है, तो उसके काटने की

गिनती कौन करे ? उन बिखरे हुए पुर्तगाली कुत्तों ने चारों ओर अत्याचारों का ताँता बाँध दिया। सारा गाँव उनके अत्याचारों के दावानल की लपटों में आ गया।

यह आतंक देख वह वीर एकदम आगे बढ़ने की बजाय पेड़ से वँ अपने घोड़े की ओर दौड़ा। बँधे हुए अश्वों को खोलकर अपने साथियों समेत उसने मठ की ओर घोड़ों को दौड़ाया।

मठ में पहुँचते ही घोड़े से छलांग लगाकर एकदम माधव से बोला, "माधव ! धोखा हुआ। अब एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाना। और यह मठ तो श्मशान ही नहीं, बल्कि मृत्यु का जबड़ा ही समझो। तुरन्त यहाँ से निकल चलो। उठो, घोड़े तैयार हैं।"

साधु ने भी उसका यह कहना सुना, पर वह सन्त का सन्त ही रहा। किंचित् हँसकर बोला, "अरे, ज़रा धीरज तो धरो।"

"नहीं, नहीं।" उस वीराग्रहणी ने तत्काल उत्तर दिया, "आपका यह शान्त भाव, शत्रु की क्रूरता से भी अधिक संकट में डालने वाला है, महाराज !" फिर माधव की ओर मुड़कर बोला, "देखिए, आप चलने वाले हों तो शीघ्र चलिए। हम तो अब जा रहे हैं। आपके इस भोलेपन में कहीं सारा गाँव ही न जल जाये। अपना यह शांतिपुराण समाप्त कीजिए। माँ-बहनों पर अत्याचार करने वाले तथा उन्हें भगा कर ले जाने वाले ये भेड़िये क्या आपके शान्ति-पुराणों की परवाह करेंगे ?"

किंचित् उत्तेजित होकर किये गए उसके इस कथन का रमा और माधव पर तत्काल परिणाम हुआ। अधिक सोचने में एक क्षण भी न खोते हुए वे हाँ-ना किए बिना तुरन्त अपने पुत्र को लेकर उठ खड़े हुए और उन वीरों के साथ जाने को तैयार हो गए। उन तीनों को घोड़े पर बैठाने में वे दोनों की सहायता करने लगे। उसी क्षण वह वीराग्रणी साधु महाराज का चरण-वन्दन कर कहने लगा, "महाराज ! दया कीजिए और आप भी स्वराज्य में चलिए। वहीं पर धर्म सुरक्षित है।"

वह मुनि आकाश की ओर झाँककर बोला, "स्वराज्य ! अरे बेटा, सच्चा स्वराज्य तो वही है जिसमें दिशा और काल की मर्यादा

—३

नहीं होती। दिशा-काल के बंधन में रहकर स्वराज्य का भोग थोड़े किया जा सकता है! नहीं, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

"प्रभु ने छत्रपति को अपने प्रयोग करने के लिए इधर-उधर छोटे-से क्षेत्र दिए होंगे। पर बेटा, हमें तो उसने यह सारा विश्व ही अधिकार-पत्र के द्वारा दिया हुआ है।"

उसके मोहजाल में अपना मन फिर न फँस जाए, इसलिए उस वीर ने वह व्याख्यान पूरा सुना ही नहीं। आगे क्या होता है, यह देखने के लिए अपने एक सहायक को वहाँ नियुक्त कर, पहले ही तैयार रखे अपने घोड़े पर वह बैठ गया।

तीसरा वीर जो वहाँ खड़ा था, अब साधु से बोला, "मुनिवर! इस संकट में अब एक कृपा कीजिए। यह प्रश्न किसी एक ब्राह्मण का या कुटुम्ब की रक्षा का नहीं। प्रभुजी! आप ही ज़रा मन में विचार देखिए। यह तो धर्म-संस्थापन का ही कार्य है। भगवान् रामचन्द्र जी ने इसी कार्य के लिए खड्ग उठाया था। क्या इसी धर्म-संस्थापन के लिए ही विरक्त-शिरोमणि सन्त रामदास कार्य नहीं कर रहे थे? महाराज, इस धर्म-संस्थापन के लिए ही……पापियों का नाश करने के लिए और भारत का रक्षण करने के लिए आज महाराष्ट्र रणांगन में डटा है।

"धर्म की स्थापना के लिए प्रभु रामचन्द्र जी का उठाया हुआ खड्ग छत्रपति शिवराज ने हाथ में धारण किया। और उसके पश्चात् मेरे स्वामी बाजीराव पेशवा ने आज फिर एक बार वही खड्ग म्यान से बाहर निकाला है। देखिए, महात्माजी, ज़रा देखिए तो। इस गोमांतक में यह पुर्तगाली सारी हिन्दू जनता को किस प्रकार यातनाएँ दे रहे हैं? और उन्होंने कर्मकाण्ड को भी दण्ड के योग्य ठहराया है, मानो यह कोई पाप हो! अजी, भगवान् परशुराम का देवालय ही नहीं, अपितु घर-घर में देवताओं की पूजा भी उन्होंने खण्डित कर दी है। बच्चों के यज्ञोपवीत नहीं होते, तो कहीं विवाह-संस्कार के बिना ही युवतियाँ रह जाती हैं। ओहो! सारी प्रजा कैसी संस्कार-शून्य तथा पौरुषहीन बन गई है? जिस राष्ट्र का स्वराज्य नष्ट हो जाता है, उसका बाकी क्या बच सकता है? हमारा देश गया, ध्वज गया,

यश गया। अब जाने को बाकी क्या बचा है ?

"महाराज, पुर्तगालियों के राज्य में, इस गोमांतक प्रदेश में न दया रही, न धर्म बचा। इसलिए यहाँ की हिन्दू जनता मिलकर महा-यशस्वी बाजीराव के पास गई और अपने प्रयत्नों की जानकारी देकर गोमांतक में धर्म का यश प्राप्त करने का उनसे निवेदन किया। धर्म-रक्षण हेतु म्लेच्छों को उखाड़ फेंकने के लिए शास्त्री, पंडित, देसाई, देशमुखों, सन्तों, मुनियों आदि की प्रेरणा से, एक गुप्तचरों की फौज, यहाँ पर खड्ग उठाकर विजातियों के साथ जगह-जगह जूझ रहे लोगों से सहकार्य करने, शत्रुओं का प्रतिरोध करने, जूझने वाले वीरों को प्रोत्साहन देने तथा वीरता के साथ जूझने का प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित करने के लिए हाल ही में नाना रूपों में गोमांतक में भेजी गयी है। इन सब गुप्त कार्यवाहियों का सूत्रचालक है अन्ता जी देसाई। वह स्वदेश और स्वधर्म का बड़ा अभिमानी है। 'अपना धर्म ही केवल सच्चा है और उसके विरुद्ध जो-जो कुछ है वह सब पाखण्ड मात्र है' ऐसा मानकर हिन्दुओं का धर्मनाश करने वाला पुर्तगाली शत्रु जब हिन्दू कर्मकाण्ड की निन्दा करने लगा तब यह अन्ता जी देसाई बड़े स्वाभिमान के साथ उछल कर बोला था, "मैं अपना धर्म-कर्म अवश्य करूँगा। उसका यह धर्म-प्रेम ही उसकी वीरता सिद्ध हुआ। पुर्तगालियों ने इसको महा अपराध समझा और पुर्तगाली धर्म-शासन उसको पकड़ने के लिए उसका पीछा करते हुए बोले, 'ओ पाखण्डी, क्या तू यज्ञ करना चाहता है ? ठहर ! तेरी यह हवस पूरी करने के लिए अपने धर्म-शासन के यज्ञ में तेरी आहुति चढ़ाते हैं।' और उसके सब अधिकार-पद, उसकी जायदाद, उसका घर-बार सब-कुछ जब्त कर लिया गया। उसका सर्वनाश किया गया। किन्तु अन्ता जी होशियारी से यहाँ से महाराष्ट्र में चला गया। और अब खड्ग धारण कर उन दुष्ट पुर्त-गालियों को काल की तरह कँपा रहा है।

"साधु महाराज, उन अन्ताजी की गुप्तचर-सेना के ही हम तीनों सैनिक गुप्त-रूप से अंतुनिया का पीछा करते रहते हैं। महाराज भार्गव क्षेत्र कोंकण में जिस तरह ब्रह्मेन्द्र स्वामी धर्म-रक्षा के लिए खड़े हैं, वैसे ही आप भी गोमांतक में स्वधर्म का नेतृत्व स्वीकार करें, ऐसी हिन्दूमात्र

की उत्कट इच्छा है। इस आशा से ही, महाराज ! हम आपके आश्रय में आए थे। क्या आप-जैसे धर्ममार्तंडों को ही धर्म-स्थापना के कार्य का नेतृत्व कर उसे गतिमान नहीं करना चाहिए ?"

इस प्रकार अपना पूर्व-परिचय बताकर वह वीर साधु से कहने लगा, "महाराज ! मुझे यह सन्देह है कि प्रातःकाल होते ही अंतुनिया की फौज मठ को घेरा डालेगी, और माधव आदि यहाँ नहीं हैं, यह देख कर उनका पता लेने के लिए आपको यातनायें दिए बिना नहीं रहेगी। जब तक कौन-कौन, किस-किस दिशा से गए हैं—यह उन्हें पता नहीं चलेगा, तब तक वे दुष्ट-बुद्धि प्रायः ग्राम के अन्दर इधर-उधर उसकी खोज करेंगे। बीच के काल में अपने गये हुए वीर भी माधव आदि को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा कर पुनः गाँव की रक्षा करने के लिए फौज के साथ लौट सकेंगे। इसलिए, महाराज······"

उसका वाक्य पूर्ण होने से पूर्व ही साधु बोला, "अरे पगले, कोई भी यहाँ क्यों न आ जाए, मुझे भला कष्ट कौन देगा ? शिवशम्भु सब प्रकार से मेरी रक्षा के लिए सिद्ध हैं। नहीं, नहीं, बेटा ! मुझे भय अथवा असत्य का स्पर्श भी हो सकना असम्भव है। मैं सत्य ही कहूँगा और अपनी आँखों-देखा हाल ही बताऊँगा।"

साधु की यह बात सुनकर वह वीर चौंक गया, "साधु महाराज ! मैं अपना भाव ठीक प्रकार स्पष्ट नहीं कर सका। अजी ! एक बार शराबी को शराब का और कसाई को गाय का दान करना भी क्षम्य माना जा सकता है, किन्तु सज्जनों की भी हिंसा करने वाले दुष्टों के हाथ में पीड़ितों को सौंपना कदापि उचित नहीं होगा। इसलिए हे महात्माजी ! अब अगर शत्रु यहाँ आ जाते हैं तो उन्हें 'माधव आदि कहाँ गए हैं, यह हमें बिल्कुल पता नहीं' ऐसा बताना ही कर्तव्य हो जाता है।"

"असत्य बोलना और वह कर्तव्य ?" साधु बोला, "नहीं, ऐसा मेल क्या कभी हो सकता ? बेटा ! झूठ तो झूठ ही है—

सत्यार्थं मरणं वरम्।
न हि सत्यात् परोधर्मः।
नानृतात पातकं परम्॥"

उस वीर ने किंचित् हँसकर उत्तर दिया, "महाराज ! सत्य का पुण्य केवल शब्दों पर नहीं अपितु हेतु पर निर्भर है। अगर ऐसा न होता तो मुझे 'बेटा' सम्बोधित कर अपने असत्य-भाषण का पाप अपने माथे क्यों लिया होता ?"

'सचमुच, सत्य का यदि अक्षरशः पालन करना हो तो यह मेरा बेटा कहाँ है ?' ऐसा मन-ही-मन क्षण-भर सोचकर वह मुनि बोला, "ठीक, मेरी गलती के लिए क्षमा करें।"

"नहीं, नहीं, मुनीन्द्र यह गलती नहीं है," उस वीर ने उत्तर दिया, "सत्य का सत्यत्व—सत्व—केवल जड़ शब्दों पर ही निर्भर नहीं, बल्कि उसके पीछे की शुद्ध बुद्धि पर अवलम्बित रहता है।"

"अरे भाई !" वह साधु फिर से बोला, " 'आत्महेतोः पदार्थे वा ये मृषा न वदन्ति ते' वही शुद्ध बुद्धि वाला है, ऐसा मैं मानता हूँ।" उसकी यह हठधर्मी देखकर वह वीर कुछ चिढ़कर उस साधु से अन्त में बोला, "महात्माजी, केवल सती रमा का सतीत्व अथवा उस बालक के करुण जीवन ही नहीं अपितु ऐसे सैंकड़ों पीड़ितों की भी रक्षा केवल आपके शब्द पर ही अवलम्बित है। इसलिए महाराज ! कम-से-कम आप मौन धारण कीजिए। इतनी ही अब आपसे हाथ जोड़कर मेरी प्रार्थना है।"

"सत्यं वद," वह साधु आग्रहपूर्वक बोला, "यह जो वेदों की स्पष्ट आज्ञा है वह भी तो पीड़ित जीवों की मुक्ति के लिए ही है। वहाँ उसके लिए मौन रहने का विकल्प नहीं बताया गया है।"

इस प्रकार ज़ोरदार विवाद चल रहा था कि इतने में सदा खुले रहने वाले द्वार से प्रवेश करता हुआ एक पुर्तगाली गोरा अपनी तलवार की नोक मुनि की ओर तानकर गरज कर बोला, "यही है, यही है।" तत्काल कुछ सैनिकों ने उस मुनि को पकड़ लिया और बाकी सशस्त्र सैनिकों ने मठ को घेर लिया।

उस वीर की ओर ध्यान जाते ही लाल-पीला होकर अंतुनी चिल्लाया, "कौन है रे, तू ? इसको भी पकड़ लो।" उसने सैनिकों को आज्ञा दी। उस वीर ने संयम से अपने क्रोध को रोककर कहा, "महाराज, मैं तो एक साधारण यात्री हूँ।"

इस पर अंतुनी साधु की ओर मुड़कर बोला, "क्यों गोसाईंजी, यह जो कुछ कह रहा है, क्या सच है ?"

"अरे अंतुनिया," साधु ने कहा, "तुम-हम सभी जो मठ में हैं, यात्री ही हैं। अरे, इस संसार में स्थायी कभी कोई हुआ है ?"

"माधव कहाँ है ?" अंतुनिया ने डाँटकर पूछा।

"यहाँ नहीं है।" साधु सन्तप्त होकर बोला।

"इधर घुसो, तोड़ो इस कमरे के दरवाज़े को" वह पहले मठ में आकर गया हुआ सिपाही बोला, "घुसो, चलो पकड़ो।"

किन्तु सारा मठ खोजने पर भी माधव कहीं नहीं मिला। अब तक के शत्रु के प्रश्नों के साधु द्वारा दिये हुए उत्तर सुनकर उस वीर के मन को थोड़ी तसल्ली हुई थी। उस संकट में भी उसके चेहरे पर कुछ आनन्द झलका। वह मन-ही-मन सोचने लगा, "वाह-वाह ! धन्य है यह साधु ! झूठ तो बोला नहीं और नुकसान हो, ऐसा भी कुछ कहा नहीं।"

वह वीर मन में साधु की चतुराई की प्रशंसा कर ही रहा था कि अन्तुनी साधु की ओर मुड़कर बोला, "देखिए, सामान्य साधु भी कभी झूठ नहीं बोलते। आपकी योग्यता तो कई गुना अधिक है। महाराज, आप तो प्रत्यक्ष शंकर के सामने वाले नन्दी ही हैं। कैसी है आपकी निष्ठा इसलिए गोसाईंजी ! कृपा करके हमें सच बताइये।"

साधु—"अन्तुनिया, जो कुछ कहा है, वह सत्य ही है। ईश्वर के निष्ठावान उपासक को असत्य कभी भाता नहीं।"

अन्तुनिया—"साधु बाबा, क्या यहाँ माधव आया था ?"

साधु—"हाँ, आया था।"

अन्तुनिया—"और कौन-कौन आये थे ?"

साधु—"उसकी पत्नी और उसका बालक भी।"

अन्तुनिया—"उन्हें भला यहाँ कौन लाया ?"

"ये तीन व्यक्ति।" साधु बाबा ने उत्तर दिया और अन्तुनिया ने बिना पूछे ही उस वीर की ओर मुड़कर कहा, "क्या यह उनमें से एक है ?" उस समय वीर का चेहरा फीका पड़ गया।

"ठीक, ठीक। आप सचमुच ही शम्भु-भक्त हैं। अच्छा साधु

महाराज, अब यह बताइये कि वह सारी टोली भागकर कहाँ छुपी बैठी है ?"

साधु—"यह मुझे बिल्कुल मालूम नहीं।"

यह उत्तर सुनकर उस वीर के मन में फिर एक बार आशा जगी।

"सचमुच यह पता कैसे लगे।" साधु के उत्तर पर वह गोरा सैनिक बोला, "ठीक, साधु महाराज ! मैं जब इस स्थान को छोड़कर गया था उसके बाद किस-किस ने क्या कहा, भला ! देखिए, साधु बाबा ! सब धर्मों का सार केवल सत्य ही है, यह हम भला आपको क्या बतायें ? इसलिए आप जैसे महात्मा सत्य ही तो बतायेंगे !"

और इस पर उस महात्मा ने, मानो वह कोई पुस्तक ही पढ़ रहा हो, सारा वृत्तान्त सीधा-सीधा निवेदन कर दिया। उसने सब-कुछ कह डाला, कि उस वीराग्रणी ने क्या-क्या कहा था, वह गाँव में कैसे गया और लौटकर कैसे आया था। बाद में सब कैसे और कहाँ गये, आदि-आदि समाचार भी उस भोले शंकर के महाभक्त ने कह डाले।

वह सब-कुछ सुनते हुए क्षण-क्षण उस वीर का क्रोध बढ़ रहा था। अपना गुस्सा प्रकट न हो इसलिए उसने अपना होंठ दाँतों से इतने ज़ोर से दबाया कि उसमें से खून बहने लगा। 'यह साधु न होकर कहीं सचमुच में अन्तुनिया का साथी तो नहीं है।' ऐसा सन्देह उसको हुआ।

साधु के इस कथन में अन्ताजी का नाम सुनकर, जैसे बिच्छू ने काट लिया हो, ऐसी भीतिग्रस्त अवस्था अन्तुनिया की हो गई।

उस वीर का क्रोध देखकर अन्तुनिया ने डाँटकर कहा, "बोल, शीघ्र बोल ! वह अन्ताजी आज कहाँ है ? अपनी जान अगर तुझे प्यारी है तो तुरन्त बता दे।" इस पर उस वीर ने बनावटी विनय से कहा, "स्वामी, मैं एक यात्री हूँ। बताइए, मुझे कैसे मालूम हो सकता है कि अन्ता जी कहाँ हैं। मुझ गरीब ने शिव-भक्ति की भंग भी पी नहीं, अथवा इस साधु बाबा की तरह नंदी बैल के समान शंकर की उपासना भी की नहीं, फिर मुझे इस तरह का अंतर्ज्ञान कैसे हो सकता है ?" इस पर उस गोरे गुप्तचर ने क्रोधवश उस वीर को तलवार की

नोक भोंक दी।

"नहीं, नहीं" अंतुनी ने उसको रोककर कहा, "यह हमें शोभा नहीं देता। अपराधी को दण्ड धर्म-शासन के द्वारा ही मिलना चाहिए। क्रोध में भी ऐसा वर्ताव यीशु के यश को कलंकित करने वाला है।"

ऐसा कहकर उसने साधु द्वारा संकेत की गई दिशा की ओर खोज करने के लिए गोरे सैनिकों को भेज दिया और मठ में कहीं कोई छिप कर वच न जाए, इसलिए उस प्राचीन मठ को भी अग्नि-ज्वालाओं के मुख में धकेल दिया।

मठ मशाल की तरह भमक उठा। सामने पुर्तगाली सैनिकों का दल रास्ते पर खड़ा था। उसके साथ ही वह साधु और वह खून से लथपथ वीर भी खड़ा था। इतने में अचानक ही साधु का पाला हुआ वह साँप अग्नि-ज्वालाओं से त्रस्त होकर फूं-फूं करता हुआ मठ से बाहर आया और जो लोग सामने थे उनमें से जिनका पर मिला, पूरे ज़ोर के साथ उसने डस लिया। किसका था वह पैर?

क्या मठ को आग लगाने वाले उस दुष्ट अन्तुनिया का?

नहीं, नहीं। वह पैर था, उस साँप को पुत्रवत् पालने वाले उस साधु का। उफ! उस साधु के शरीर को भी विष के कारण वैसी ही आग लग गई जैसी मठ को लग रही थी।

यह देखता वह गोरा गुप्तचर हँसकर बोला, "क्यों महाराज, आपके पिलाये हुए दूध का ही यह विष! यह तो अव आपको मीठा लग रहा होगा!"

इस प्रश्न के व्यंग्य का विष पीकर साधु हँसकर कहने लगा, "दुध-मुँहा बच्चा क्या माँ के स्तन को कभी काट नहीं लेता? यह भी वैसी ही वात है।"

मठ धुआँधार जल रहा था। विष की लहरों की तरह ही भयंकर अग्नि-ज्वालायें उठ रही थीं। और, अरे-रे, उस पारिजात वृक्ष पर रात्रि को विश्रांति के लिए वैठे हुए पंछी भी वेचारे भुने जा रहे थे।

उधर पुर्तगालियों के सशस्त्र घुड़सवार दौड़ लगाते हुए माधव की पीछे जा पहुंचे।

माधव ज़ख्मी था, रमा को घोड़े पर वैठने का अभ्यास नहीं था

और उन दोनों को सम्हालते हुए घोड़ों को अधिक वेग से चलाना उस वीराग्रणी के लिए सम्भव नहीं था। और अब शत्रु भी पीठ पीछे आ पहुंचा देख उस वीर ने समझ लिया कि अब इस ब्राह्मण दम्पती का संरक्षण होना कठिन ही है। इसलिए उसने अपने सहायक को आज्ञा दी, "अब मेरा जो कुछ बनेगा सो बनेगा, किन्तु तुम तेज़ी से जाकर मराठी सेना की जो टुकड़ी पहले मिले उसे मेरा यह संदेश दो कि जितना शीघ्र हो सके यहाँ आ जायें। आज यहाँ से अन्तुनिया को जीवित न जाने दें। किसी बड़ी सहायता के मिलने से पहले ही उसका विनाश किया जा सकता है। जितनी देर लगाओगे, उतना ही अधिक स्त्रियों, वृद्धों एवं बालों की हत्या होती रहेगी। इसलिए जाओ और तुरन्त सहायता भेजो।"

उस साथी ने अपने घोड़े को एड़ लगाई। घोड़ा सरपट दौड़ने लगा। उस वीर ने अपने घोड़े को राजमार्ग से हटाकर पगडण्डी पकड़ ली। उसके घोड़े की टापों की आवाज़ के अंदाज़े से शत्रु के घोड़े भी उसके पीछे दौड़ने लगे।

इस बात का लाभ उठाकर उस वीराग्रणी का वह साथी शत्रुओं से बचकर निकल गया।

अँधेरे में गोरे सैनिक पीछा कर रहे थे। इतने में साँय-साँय करता हुआ एक तीर रमा के घोड़े के शरीर में आ घुसा। उसी क्षण घोड़ा उछला और रमा झटके के साथ ज़मीन पर आ गिरी।

दुर्बलों की भी कैसी दुर्दशा होती है। सारी पृथ्वी उनके लिए क्या श्मशान बन गई थी? अँधेरे में भी क्या उन्हें तीर का निशाना बनना था? और साधु भी क्या उनके लिए घातक सिद्ध होना था?

क्षण-भर वह वीराग्रणी भी हताश-सा हुआ। इतने में एकाएक शत्रु के सवारों ने उनको घेर लिया। अब इनका पराभव निश्चित ही था। तब वह वीर आँखों में आँसू भरकर बोला, "सज्जनो, धीरज धरो। मैं तुम्हारी सहायता के लिए अवश्य लौट आऊँगा।"

इतने में शत्रुओं ने उस पर हल्ला बोल दिया। वह वीर लड़ते-लड़ते घेरा तोड़कर पार निकल गया। किन्तु हाय, वह ब्राह्मण तो इन शत्रुओं के फिर हाथ पड़ गया। वह बेचारी रमा अपने बालक

को अपनी छाती से लगाकर दारुण क्रंदन करने लगी। उसके भीषण दुःख का कौन वर्णन कर सकता है ?"

क्षण-भर में शोकाकुल होकर वह आँसुओं की वाढ़ में डूब जाती तो दूसरे ही क्षण उस वाढ़ के तट पर खड़ी होकर मानो अपनी परछाईं उसमें देखती रहती। वहते हुए आँसुओं में अपने दुःख की भयानक परछाईं देखते-देखते वह भय से कम्पित होने लगती।

: ५ :

वह घोर रात्रि समाप्त हुई और अव उससे भी अधिक क्रूर दिन चढ़ आया। पुर्तगाली सिपाहियों ने सारे गाँव के लोगों को हाँककर वट-वृक्ष के चवूतरे के सामने लाकर खड़ा कर दिया और तव वह यीशु-भक्त अन्तुनिया आँखें मींचकर क्रॉस पर लगी यीशु की प्रतिमा को प्रणाम कर, ज़ोर से वोला "हे प्रभु ! आप मुझे आसन पर वैठते हुए को न्यायशील वुद्धि प्रदान करो।"

माधव को उस न्यायाधीश वने अन्तुनिया के सामने खींचकर लाया गया। यह दृश्य देख वहाँ एकत्रित सभी भोले भक्त आश्चर्य से दंग रह गये। क्यों न होते ? माधव को मुक्त करने वाले प्रत्यक्ष भगवान-सरीखे उस वीर से ही जव अन्तुनिया उसे वापस छीन लाया था। इतने में उन सैनिकों ने रमा और उसके वालक को भी अन्तुनिया के न्याय-आसन के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया। ओह ! कितना करुण था वह दृश्य !

वह त्रस्त सेठ, वह कुपित मास्टर, वह दीन-हीन वेचारा आचार्य, वह आँसू वहाने वाला पटेल, वह वीर का उद्दंड साथी और वह सत्य का अवतार साधु सभी को मानो एक ही लाठी से हाँकते हुए, निर्दयता-पूर्वक अन्तुनिया के सामने पेश किया गया। यह दृश्य देखकर जन-समूह की आँखों में आँसू भर आये।

तव अन्तुनिया ने वार-वार वाइविल के पृष्ठों को पलटते हुए वड़ी निश्चयपूर्वक वाणी से माधव को सम्वोधित करते हुए कहा, "तूने ईसाई-धर्म की उस प्रभु की ईश्वरीय आज्ञा को जान-वूझकर ठुकराया है। शैतान की आज्ञा मानकर दिन-दहाड़े पाखंड का आचरण किया है और हिन्दुओं के असत्य धर्म के जाल में फँसकर नरक-तुल्य क्रूर-कर्म

किया है, इसलिए हे माधव ! तेरी मुक्ति के लिए तुझे अग्नि में डालने का दंड देना ही न्यायसंगत है और तेरा पुत्र यद्यपि छोटा बालक है तो भी कल बड़ा होकर यह भी इस भ्रष्ट धर्म का केन्द्र बनेगा, इस लिए इसे भी आग में जीवित जलाने का दंड देना न्याययुक्त ही है। किन्तु रमा तुम्हें अग्नि में जीवित जलाने का दंड नहीं दिया जाता। यद्यपि तूने स्वाभाविक रीति से इस पाखंडपूर्ण कार्य में अपने पति का साथ दिया है, तो भी तेरे लिए यह कठोर दंड उचित नहीं, क्योंकि हिन्दुओं का विवाह तो केवल स्त्री-पुरुष का इकट्ठा रहना मात्र ही होता है, उसमें समर्पण का रूप तो होता ही नहीं। केवल एकमात्र ईसाई ढंग के विवाह में स्त्री-पुरुष के बीच एकरूपता आती है, किन्तु हे पापिनी ! तूने भाग जाने का पाप तो अवश्य किया है, फिर भी मैं उसका बदला नहीं लूंगा। प्रभु मुझे बदले की भावना से बचाये, तुझे अग्नि में डालने की सजा नहीं दी जायेगी।"

अन्तुनिया का यह न्याय-सम्बन्धी भाषण सुनकर रमा के आँसू अपने-आप ही सूख गए। वह तनकर सीधी खड़ी हो गई, मानो भय उससे कहीं दूर भाग गया हो। उसके मुख पर एक नया भीषण, लेकिन गरिमायुक्त हास्य उमड़ने लगा। वह यन्त्रचालित प्रतिमा के समान बोलने लगी, "हे धर्मात्मा अन्तुनिया ! हम सब हिन्दू वधुएँ विवाहिता न होकर रखैल हैं······वेश्याएँ हैं, यह तेरी राय सच भी मान ली जाय तो भी कम-से-कम मातृत्व का अधिकार तो हमारा है ही। मातृत्व का भाव पशुओं में भी प्रकृति से ही होता है। तब इस हिन्दू जाति का स्तर उतना तो मानोगे ही ! पत्नी-पद के योग्य हम हिन्दू स्त्रियाँ शायद न हों, किन्तु हम में माँ का हृदय तो है न ! उस हृदय में वात्सल्य और उस वात्सल्य में दूध भी तो है न ! अन्तुनी ! तूने भी तो कभी इसी छाती का दूध पिया ही होगा। अरे ! उस दूध का स्मरण कर, उस जननी के स्तन का स्मरण कर कि जब तेरे मुँह में दाँत नहीं थे, तब जिसने तुझे बार-बार दूध पिलाकर तेरा पोषण किया।

"अरे, अन्तुनिया ! देख क्या रहा है ? क्यों, याद नहीं आता ? याद न आता हो तो अपनी नस-नस में बहने वाली रक्त की एक-एक बूंद से पूछ ! वह तुझे याद दिला देंगी। अन्तुनिया, तूने अगर जीवित

माँ का दूध पिया हो तो अपने रक्त के अणु-अणु में समाया हुआ माँ का वह दूध जगने दे। उठने दे उस दूध की ज्वाला को। मेरे मातृ-हृदय में उठने वाले तूफान का अनुभव कर और उस तूफान से अपने हृदय की क्रूरता को उखाड़ फेंक। अन्तुनिया ! अरे, तेरे अल्हड़ बालकपन में तेरी माँ की गोद में सोये हुए तुम्हें अगर कोई घसीट कर आग में फेंक देता तो तेरी माता के हृदय पर क्या बीतती। अरे, अपनी माँ के द्वारा पिये हुए दूध से सुबुद्धि ग्रहण कर।

"फूल के लिए शाखा अपने-आपको सुखाती है, किन्तु जिसके समागम के बिना फूल खिल ही नहीं सकते, उसके बिना शाखा भी कैसे जीवित रह सकेगी ? इसलिए अन्तुनी ! तुझे अगर जीवन-दान देना है तो मेरे पति और फूल-से पुत्र को भी जीवन-दान दे। उनका वध करना तो मेरा सहस्र बार वध करने के समान है। उन्हें अग्नि जला देगी तो मैं दुःख की अग्नि में जल कर भस्म हो जाऊँगी।"

अन्तुनी न्याय के लिए प्रसिद्ध था। वैसा न्यायाधीश शायद ही कहीं हुआ हो। एक बार जिन नियमों को उसने न्याय के लिए प्रमाण मान लिया उनका भंग वह भय अथवा लोभ के कारण कभी नहीं करता। धर्म-शासन के नाम पर कितनी ही नर-हत्याएँ हुई होंगी, किन्तु उन्हें ऐसा शायद ही कोई धर्मात्मा न्यायाधीश मिला होगा। पीटर नाम का एक प्रसिद्ध धर्माध्यक्ष चुन-चुन कर सज्जनों को ही पकड़ता था और कारण बताता था कि "वे जल्दी पकड़े जाते हैं।" अन्तुनी ने तो ऐसा कभी भी नहीं किया। दूसरा एक प्रसिद्ध धर्माध्यक्ष न्याय-आसन पर ही गाढ़ी नींद सोया करता और बीच-बीच में अचानक आँखें खोलकर एकाएक हुक्म देता, "जला दो, सब पाखण्डियों को जला दो।" लेकिन अन्तुनी हाथ में न्याय-दंड लेने पर कभी सोता नहीं, उल्टा यह धर्मभीरु अपनी नजर बाइबिल के ऊपर रखता है।

रमा जब अपने मन के भावों को प्रकट कर रही थी तो अन्तुनी की नज़र बाइबिल में यीशु के मीठे वचनों पर थी। वह वचन थे, "पहले के आचार्यों ने जैसा कि तुम्हें याद है आज्ञा दी थी, 'आँख के लिए आँख' और 'दाँत के बदले दाँत' जैसे को तैसा बर्ताव किया जाय। किन्तु मैं तुमको कहूँगा कि प्रतिशोध लेना तुम्हारे लिए उचित नहीं।

उल्टा क्षमा करना ही तुम्हें योग्य है ।"

इन पंक्तियों को पढ़कर धर्मात्मा अन्तुनी शून्य में दृष्टि गाढ़ कर गम्भीर मुद्रा में बैठा चिन्तन करता रहा। धर्म क्या और आँखें क्या, इसका विचार तो वैसे ही सूक्ष्म रहता है; उसी में ये दोनों बातें धर्मानुकूल दिखने के कारण उनमें से एक को चुनना सूक्ष्म विचार का ही विषय था।

बाइबिल की ऊपर लिखित पंक्तियों पर जब उसकी दृष्टि घूम रही थी, तब उसके मन में यीशु की उक्ति भी स्मरण हो आई। यीशु ने कहा है, "कि अगर एक आँख ने पाप किया तो उसको उखाड़ फेंक। उस एक आँख के लिए तू अपनी आत्मा का घात मत कर।"

एक ओर 'आँख उखाड़ फेंक' ऐसा आदेश है। दूसरी ओर 'दंड मत दे, क्षमा कर' यह कथन है। इन दो उक्तियों में से हमारे लिए कौन योग्य है? क्या दो आँखों में से एक को दंड दिया जाय और दूसरी को क्षमा किया जाय? ऐसा ही कुछ विचार उसके मन में चल रहा था। वह रमा को संकेत कर निश्चित शब्दों में बोला, "हे देवी! न्याय के अनुसार तू तो वध के योग्य निश्चित ही नहीं है। किन्तु अपराधियों को क्षमा किया जाय, ऐसा हमारे प्रभु का आदेश है। और हमारे धर्मशासन की तो पहले से चलती आई हुई प्रसिद्ध परम्परा है कि न्याय की तलवार सदा दया के हाथ में ही रहे। इसलिए रमा, तू अब प्रभु को अपार करुणा के लिए धन्यवाद दे, क्योंकि वध के योग्य इन दो में से एक को क्षमा किया जाता है। तो अब झटपट बोल, तुझे पुत्र चाहिये या पति? तू अपनी इच्छा के अनुसार दो में से किसी एक को मृत्यु से बचा सकती है।"

'अन्तुनी ने मुझे विचित्र उलझन में डाल दिया? यह कैसी दया? यह तो पूछना ही राक्षसी खिलवाड़ है। यह तो मुझसे अमानवीय भयंकर बदला ही लिया जा रहा है। क्या यह मेरे पति-पुत्र धर्म की परीक्षा ली जा रही है अथवा वात्सल्य-भाव का मजाक उड़ाया जा रहा है।'

इन विचारों से रमा का मन दुविधा में पड़ गया। वह मन-ही-मन में लज्जित एवं क्रुद्ध हो रही थी। उधर वह दुष्ट अन्तुनी जल्दी

मचा रहा था—"हाँ, अब बोल, पुत्र चाहिये या पति ? नहीं तो देख, मैं अभी दोनों के वध के लिए आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करता हूँ ।"

उसके ये विष-भरे शब्द सुनते ही रमा बहुत ही आर्त-स्वर में बोली, "नहीं, नहीं । मैं अभी बताती हूँ । सुनिये तो । आपने क्या कहा, यही पहले मेरी समझ में नहीं आया था । किन्तु अब समझ गई हूँ । देखिये……देखिये……मैं……अब……बताती……हूँ…… मैं कहती हूँ……सुनिये……हाय रे, भाग्य !……अब मैं कहूँ भी क्या ?……भला क्या बोलूँ ? मेरा सारा धीरज समाप्त हो रहा है ।……अब मैं कैसे बोल सकती हूँ ।"

होश में होते हुए भी उस दारुण आघात के कारण बेचारी बड़बड़ा रही थी । वह शब्दों को रोकने का प्रयास कर रही थी, किन्तु वे उसके मुँह से बरबस फूट पड़ रहे थे । बेचारी की कैसी विचित्र अवस्था थी ।

रमा की यह अवस्था देखकर माधव उसे धीरज बँधाता हुआ बोला, "रमा साध्वी, अपना पुत्र बचा ले । पुत्र-हत्या करके पितृ-ऋण का पाप तेरे और मेरे माथे न लगे, इसलिए रमा, पुत्र का ही जीवन-दान माँग । अरी, हमने तो संसार देखा हुआ है और वह बेचारा कल का बालक । 'आत्मा वै पुत्रानामासि', इसलिए सखी, यह पुत्रघात न कर ।"

इधर माधव कह रहा था पुत्र की रक्षा, और उधर अन्तुनी जल्दी मचा रहा था, "बोल, झटपट बोल ! पुत्र या पति ?" और इस राक्षसी खींचातानी में उस बेचारी रमा का हृदय फटा जा रहा था । व्याकुल हृदय का एक-एक अणु बटोर कर वह आखिर में आर्त-स्वर में बोली, "अजी, पुत्र या पति, यह मैं कैसे कहूँ ? वह अब आप ही बताइये । हाय, हाय ! हे धर्मात्मा अन्तुनी, तुम्हारे धर्म का यह अमानवी-न्याय कम-से-कम मैं तो सहन करने में असमर्थ हूँ । आप ही जो कुछ बताना चाहें, बताओ ।"

इस पर अन्तुनी उतावला होकर गरजकर बोला, "देव-न्याय के अनुसार तो दोनों वध करने योग्य हैं । किसी को भी मैं दोष-मुक्त नहीं मानता । किन्तु दोनों का ही वध किया तो वध के अयोग्य तू भी मर

जायेगी; इसीलिए केवल तेरा जिसमें अधिक मोह है, ऐसे किसी एक को मुक्त करने की मैं तुझ पर दया कर रहा हूँ। अब तेरी जान किसमें है, यह तो तुझे ही पता हो सकता है। तू जिसको बचाना चाहेगी, उसी पर दया की जायेगी। इसलिए बोल पुत्र या पति? अथवा कर दूँ दोनों के वध के आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर?"

रमा फिर से भौंचक्की हो वितर-वितर देखने लगी। फिर से पागलों की तरह बड़बड़ाने लगी, "ना, ना, दया कीजिये। देखिए, मैं अभी बताती हूँ—लीजिए, सुनिये······"

"पुत्र, कह दे प्रिया! सती रमा, डर मत। कह दे, पुत्र चाहिए। मैं तेरा पति माधव स्वयं तुझे कह तो रहा हूँ।"

माधव के ये सब शब्द सुनते ही, रमा के भी मन में आया कि 'पुत्र' कह दिया जाए, किन्तु हाय! मानो किसी ने उसका गला ही धर दबाया हो। वह कैसे बोलती? क्या कहती? एकाएक उसे अपना विवाह-समारोह आँखों के सामने दिखाई देने लगा। उस हवन प्रकाश में चमकने वाली वर के साथ सप्तपदी करने वाली भला वह कौन नव-वधू है? और कौन है वह वर? अहा-हा, फिर से नव-तरुण दिखने वाला मेरा प्रिय माधव तथा यह हृदय में दिखाई देने वाली मैं ही हूँ नव-वधू रमा। कहाँ था भला पुत्र तब? तो फिर क्या पति का ही जीवन-दान नहीं माँगना चाहिए? विचार पति के इर्द-गिर्द मँडराने लगा। और वह अब अन्तुनिया को कहने ही वाली थी 'पति', मेरे पति को ही बचाइये, कि इतने में······

एकाएक उसके स्तन में बच्चे के प्रथम स्तन-पान के समय का दूध गूँजने लगा, 'माँ, री माँ! मैं।' गले में किसी का कोमल और नन्हा-सा हाथ लिपट गया और फिर से किसी ने हृदय को पानी-पानी कर देने वाली ही पहली पुकार की—'माँ'। मानो कोई कह रहा हो, 'हे अनन्य शरण देने वाली माँ! मैं तेरी गोद का दूध-मुँहा बालक हूँ। मुझे गोद में उठा ले। फिर से हृदय से उठा 'पुत्र' शब्द गले तक आया—अब मुँह से निकलने वाला ही था कि—हाय! किसी ने गले में ही उसको दबा दिया।

हवन के प्रकाश में चमकने वाली वह रोष-भरी सप्तपदी उसका

गला दवा कर उसे कह रही थी—'कहाँ था वह पुत्र ?'

'पुत्र या पति ?' कैसा प्राण-हारक था यह द्वंद्व !

वह फूलों की सेज उसके अंत:चक्षुओं के सामने आई। वह पवित्र पति-शय्या—जिस शय्या पर लज्जा का अन्तिम छोर दूर हटाया गया—अंग-प्रत्यंग एकरूप हुए। एक के हृदय में दूसरे का अंतरंग मानो उँडेल दिया गया—प्रियतम ने प्रिया को प्रथम रतिदान दिया। वह शय्या आज फिर से आँखों के सामने उतर आई। और वलात् पूछने लगी, "वोल, तव कहाँ था पुत्र ? प्रेमातिरेक से जव तेरा पति तेरे आँसू पोंछ रहा था, प्रेमाश्रु से तुझे स्नान करा रहा था, तेरे वाल सँवार रहा था, तव वोल रमा वोल, तेरा पुत्र कहाँ था भला ?'

वेचारी रमा क्या उत्तर देती ? अश्रुओं से उसका गला रुँध गया और मन की दुविधा की फाँस ने उसके गले को अवरुद्ध कर दिया। एक शब्द ज़वान पर आता, तभी दूसरा शब्द उसका मार्ग रोक देता। प्रत्येक क्षण ऐसा द्वंद्व उग्र होता जा रहा था।

क्या किया जाये ? वायाँ हाथ जाय या दायाँ ? कंठ से अव शब्द फूट ही नहीं रहा है। तलवार के एक ही वार से जान निकाल दूँ अथवा खौलते तेल में जलकर प्राण दूँ ? क्या यह दया है ? क्या ऐसे विकल्प रखकर दया की वात करना साक्षात् क्रूरता नहीं ? इस तरह के अमानुष विकल्पों में से चुना भी क्या जा सकता है ? किन्तु उपाय भी क्या ? कितने नृशंस हैं ये पर्याय।

'उस पर्याय में चुनने का काम भी करना है एक वालिका को। हाय, किसका गला काटूँ, पति का या पुत्र का ? किसका रक्त इन हाथों से वहाऊँ ?'

कैसा वह भयंकर द्वन्द्व ! कितनी भयंकर वह कल्पना ! उस कल्पना-मात्र के उच्चारण से ही, उसको लगा केवल उसकी छाया-मात्र से ही अपने प्राण निकल रहे हों। उसके हृदय में, मन में, आँखों में चक्कर आने लगे। होश गुम होने लगे।

उस अधूरी वेहोशी में अन्तुनी की वह आवाज़ उसे भयकम्पित करती हुई फिर से होश में ला रही थी। अन्तुनी गरज रहा था, "हाँ, वोल ! रमा वोल ! देख, यह अन्तिम अवसर है। आखिरी क्षण है,

कह दे, 'पुत्र' या 'पति'। नहीं तो देख, यह दोनों के वध के लिए आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर देता हूँ।"

"बोल, प्रिय रमा बोल!" माधव कह रहा था, अरी बोलना कठिन तो है, किन्तु चुप रहना क्या उससे भी अधिक भयंकर सिद्ध नहीं होगा? अरी, तेरा पुत्र जीवित रहा तो पुत्र-रूप से तेरा पति ही जीवित रहा, ऐसा नहीं होगा क्या, पुत्र मेरी आत्मा है और तेरी भी आत्मा है। तब क्या पुत्र को ही बचाना उचित नहीं है?"

रेगिस्तान की तपी हुई बालू पर भटकने वाले प्राणी की तरह रमा की दयनीय अवस्था थी। बोले तो संकट। न बोले तो भी संकट! आखिर में माधव के बार-बार आग्रह करने पर उसके मुँह से अर्द्ध-जागृतावस्था में शब्द बाहर निकला—वह बोल गई, "पुत्र।"

: ६ :

पुत्र यह शब्द मुँह से निकलते ही रमा धड़ाम-से ज़मीन पर इस प्रकार गिर पड़ी मानो कुल्हाड़ी के घाव से वृक्ष कटकर गिरा हो।

सभी लोग अपने मन में इस दुःख को दबाए हुए इस हृदयविदारक करुण दृश्य को देख रहे थे। अब, वे भी उन वेदनाओं को रोक नहीं पा रहे थे। वातावरण में हाहाकार का-सा स्वर गूंजने लगा।

"प्रिय रमा! उठ।" माधव समझाते हुए कहने लगा, "उठ! दुःख के समय तो तूने धैर्य रखा और अब आनन्द के प्रसंग में तू इस तरह हताश क्यों हो रही है। साध्वी! उठ शंकर को अपनी गोद में ले। आज का दिन उसके लिए मृत्यु-दिन बनने वाला था, किन्तु तूने अपनी धैर्यपूर्वक वाजी से ही उसको मानो पुनर्जन्म दिया है। उठकर उसे सँभाल तो सही। शंकर को छाती से लगाकर घर ले जा। उठ! रमा! अपने इस वंश-दीप की रक्षा कर। उठ! सती! उठ।"

माधव की इस अमृतवाणी से रमा को होश हुआ और सँभलकर उसने पुत्र को उठा लिया। प्रेमभाव से अपनी छाती से लगाया ही था कि अंतुनी गरजकर बोला, "नहीं, कदापि नहीं। तुझे और तेरे पुत्र को कदापि घर नहीं जाने दिया जाएगा। मृत्यु-दंड की माफी से यह मतलब नहीं कि सारा ही दंड माफ हो गया है! हे स्त्री! तू,

तेरा यह वालक और वाकी ये सव वंदी वने लोग इस भ्रष्ट धर्म में पाखंड के सहयोगी थे। अव तुम सवको अपने पापों के प्रायश्चित्त के लिए ईसा मसीह की शरण में जाने के अतिरिक्त कोई दूसरा चारा नहीं, इसलिए चुपचाप ईसाई-धर्म स्वीकार करो। यदि स्वेच्छा से स्वीकार न करोगे तो वह आसमान का गडरिया शक्ति से तुम्हें अपने झुण्ड में अवश्य खींच लेगा। श्रद्धा से आओगे तो स्वतन्त्रता मिलेगी और ज़वरदस्ती आओगे तो दासता का दंड भोगना पड़ेगा। मेरे निर्णय को तो राजाज्ञा भी वदल नहीं सकती। केवल दया के मोह में मैं इस निर्णय को वदल दूंगा, यह कदापि संभव नहीं है, इसे भलीभाँति समझ लो।"

अंतुनी के ये शव्द अभी गूंज ही रहे थे कि उस भयभीत जन-समूह के वीच से एक आवाज़ आई, "धिक्कार!" यह आवाज़ कहाँ से आई, किसी को समझ में नहीं आया। क्रोध-भरी आवाज़ फिर से गरजी "धिक्कार, क्या तूने न जलाकर इन्हें गुलामों के वाज़ार में वेचने के लिए ही जीवित रखा है। धिक्कार है! धिक्कार!!"

यह क्रोध-भरी गर्जना सुनते ही अंतुनी कुछ चौंक-सा गया। ये शव्द किसी दीन-दुर्वल का चीत्कार नहीं थे। धिक्कार में छिपी निर्भीकता को वह समझ रहा था। उसकी चुनौती का उसे अनुभव हो रहा था। परन्तु वह घृणित भाव से वोला, "मैंने तुम्हारी सव प्रार्थना और गवाहियाँ सुनकर ही दंड दिया था। अपराध के नियम सवके लिए एक हैं, चाहे वह हिन्दू हो या ईसाई, पुरुप हो या स्त्री।" फिर वह ग्राम-सभा की ओर गंभीरता से निहारकर वोला, "सत्य धर्म और राजाज्ञा के पालन करने में मेरे सैनिकों ने भी यदि कोई अत्याचार किया हो, धोखा किया हो तो वंदी लोगों में से भी वेशक कोई आकर वताए, जैसे आप दंड के पात्र हैं, वैसे ये सैनिक भी दंड के पात्र हो सकते हैं।"

अंतुनी के इस कथन को सुनकर प्रत्येक को लगने लगा कि अपने मन के भाव प्रकट करने चाहिएँ। किन्तु प्रत्यक्ष कहने की हिम्मत कौन करे। उन वंदियों में शुरू से ही अन्तुनी की ओर वार-वार क्रोध से देखने वाला एक आचार्य था। वह शुरू से ही कभी खँखार कर और

कभी अन्य हास्य-भाव से अपने मन के क्रोध को व्यक्त कर रहा था। जैसे कोई पंक्ति में खड़ा घोड़ा वार-वार हिनहिना कर अपने मन के उत्साह को व्यक्त कर रहा हो। अव उसे अच्छा अवसर मिल गया। मुँह पर वनावटी हास्य लाकर वह वोला, "भद्र अन्तुनी! पाखंड का भंडाफोड़ करने में तेरा जीवन पूर्ण हो, ऐसा मुक्त ब्राह्मण का आशीर्वाद है। सचमुच धन्य है वह कुमारीपुत्र यीशु, और धन्य है उसको जन्म देने वाली अक्षतकन्या मेरी। उस यीशु का सत्य धर्म भी धन्य है। फिर उसका धर्मशासन भी धन्य क्यों न होगा! धन्य है तू और धन्य है तेरा यह धर्मशासन!

"हे धन्य अंतुनी! जीवों की हत्या मत करो, यीशु के इस आदेश का पालन करने के लिए ही तुम उनका वध न करके इन्हें जीवित जला देते हो, परस्त्री-गमन योग्य नहीं है, यीशु की इस वाणी का आदर करने के लिए तुम वलात्कार नहीं करते, वल्कि कुमारी कन्याओं को अपने अधिकार द्वारा स्वयं ही वरण करने के लिए विवश कर देते हो। चोरी कभी नहीं करनी चाहिए, यीशु की इस आवाज़ को सही सिद्ध करने के लिए तुम अव चोरी नहीं करते, केवल लूटमार ही करते हो। किसी का गधा ज़वरदस्ती न छीना जाय, यीशु के इस वचन को सार्थक वनाने के लिए तुम उनकी घुड़सालों पर ही कब्ज़ा कर लेते हो। इसी प्रकार लोगों की ज़रा-सी वस्तु का अपहरण न करो; इस आज्ञा के पालन हेतु ज़रा के वजाय तुमने लोगों के पूरे राज्य ही हज़म कर लिए हैं। वाह-वाह, अंतुनी वाह! वाह!! वाइविल की इन आज्ञाओं का कैसा अक्षरशः पालन धन्य! धन्य!! और इन सव वातों को मात करने के लिए यीशु की इस आज्ञा 'वुराई की चर्चा न करो, न्याय दंड धारण मत करो' का पालन तुम अन्यायदंड धारण करके कर रहे हो। अश्वमेधों का पाखंड समाप्त करने के लिए अव यह जो नरमेध अपनी दिग्विजय की लालसा में तुमने शुरू किये हुए हैं, उन नरमेधों में इस ब्राह्मण को भी आहुति वना लो, इतनी ही याचना मैं तुमसे करता हूँ।

"अंतुनी! इस प्रदेश में मैंने तेरे धर्म-प्रचार को अनेक तरह से रोकने का यत्न किया। तुमने वहुत-सी पाठशालाएँ इस प्रदेश में खोलीं,

किन्तु मैंने तुम्हारी नौकरी स्वीकार नहीं की। शिक्षा का श्रीगणेश हिन्दू-पद्धति से ही किया जाय, इसके लिए मैंने तुझसे वाद-विवाद भी किया। कल के जन्म-दिन के उत्सव में भी मेरा हाथ था। मेरे इतने अपराध मुझे अग्नि में समर्पित करने के लिए काफी न हों तो हे अंतुनी, सुन, मैं दिन-रात परमात्मा से प्रार्थना करता रहता हूँ कि हे भगवान ! म्लेच्छों के इस राज्य का शीघ्र नाश हो और राष्ट्र-धर्म की खड्ग विजयी हो।"

आचार्य की यह टेढ़ी बातें समाप्त हो ही रही थीं कि लोगों की भीड़ में से फिर वही धिक्कार की गर्जन उठी, "धिक्कार······पकड़ो ······दौड़ो······चलो······शत्रु पर टूट पड़ो······मारो !"

यह गर्जना सुन अंतुनी एकदम उठ खड़ा हुआ और उसकी सेना ने रक्षा के लिए शस्त्र सँभाल लिए। जो जोश 'पकड़ो, मारो' की गर्जना से लोगों के मन में उत्पन्न हुआ था, वह पुर्तगाली शस्त्रों की चमक देखते ही ठंडा पड़ गया। निकट ही वह साधु, जिसे अभी तक बाँधकर रखा गया था, कुछ थका-सा उदासीन खड़ा था। लोगों की यह गर्जना सुनकर बोला, "भाइयो ! यह कैसी गर्जना तुम लोग कर रहे हो, कौन है तुम्हारा शत्रु। संसार में सब आत्माएँ एक ही ब्रह्म का स्वरूप हैं।"

साधु का बोलना शुरू करते ही अन्तुनी उसका मुँह बंद करने के लिए बढ़ा, परन्तु उसका यह रुख देखकर वह रुक गया। साधु कहता गया, "बंधुओ, सच पूछो तो रजोगुण से उत्पन्न काम और क्रोध यही मनुष्य के सच्चे शत्रु हैं, अंतुनी अथवा मलेच्छ नहीं। अंतुनी तो हमारा भाई है। अगर वह गलत रास्ते पर जा रहा है, तो उसे समझा लो। अरे, वैर से कभी वैर मिटता है। अंतुनी की सेना ने अनाज ही लूटा था न। तो क्या हुआ, उन्हें आवश्यकता रही होगी। उनके क्रोध को जीतना चाहते हो तो दया से ही जीतना चाहिए। उन्होंने हमारी कुँवारी कन्याओं को भ्रष्ट किया, यह बात सचमुच ही बड़े दुःख की है ! उन्होंने यह तो मान ही लिया है। किन्तु भाइयो, उन्हें दंड देने वाले तुम कौन हो ? क्या तुम स्वयं निष्पाप हो। तो फिर एक पापी दूसरे पापी को किस प्रकार प्रायश्चित्त करा सकता है। ज़रा याद करो,

ऐसे ही एक प्रसंग में उस ईश्वर के पुत्र यीशु ने कहा था, 'आप में से जो पापी न हो, वह पहले पत्थर मारे।' मानव का न्याय केवल एक ईश्वर ही कर सकता है। वही मानव से उसके पापों का हिसाब पूछ सकता है। इसलिए उस परमेश्वर को सब-कुछ सौंप दो। भद्रजनों को सचमुच अंतुनी द्वारा दी हुई यातनाओं से मेरे दिल को बहुत कष्ट होता है, किन्तु उससे भी अधिक तुम्हारी इस क्रोध-प्रवृत्ति से मेरा हृदय दुःखी है। भाइयो, किसी ने दाहिने गाल पर थप्पड़ मारा, बदले में थप्पड़ मारने की अपेक्षा दूसरा गाल आगे करने को ही अहिंसा-रूपी परम धर्म बताया गया है। युग-युग में, सब भाषाओं में, सारे विश्व में और सब वेदों की एक-एक ऋचा में यही उपदेश नहीं है क्या? आघात से एक ही जीव मारा जाता है, किन्तु प्रत्याघात से प्रतिशोध की भावना से लाखों लोग मारे जाते हैं। आघात के बाद प्रत्याघात न किया तो उससे आघात की क्रिया-शक्ति सीमित हो जाती है, क्योंकि—अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेव उपशम्यति।

यह अटल नियम है, इसलिए भाइयों के प्रतिशोध लेने के बजाय शत्रु को छोड़ देना, क्षमा करना, यही सच्चा, पवित्र पुरुषार्थ है। स्वरक्षा के लिये किये गए प्रत्याघात के पाप से भी नरक ही मिलता है। मेरे भाइयो, 'जयो वैरं प्रसवति दुःखं शेते पराजितः। उपसंतः सुखं शेते हित्वा जयपराजयोः ॥

"इस शांति की शिक्षा को मत भूलो। इसी का पालन करो। तभी संसार में शांति रह सकती है।"

पहले ही पुर्तगाली शस्त्रों की चमचमाहट से भय-कंपित हुए उस जन-समूह को यह शांति-संदेश देने वाली बातें मुक्तिदायिनी ही प्रतीत हुई। सब लोगों ने उसका पुनः-पुनः जय-जयकार किया, 'निनाम बाबा की जय!' (उसका नाम-पता न होने के कारण सब उसे निनाम बाबा ही कहते थे।) तब अंतुनी भी प्रसन्न होकर बोला, "बहुत ठीक, बहुत ठीक साधु महाराज! इस शुभ कार्य को पूर्ण करने के लिए आपके बिना मदद करने वाला और भला कौन हो सकता है!"

प्रत्यक्ष शत्रु के प्रशंसा करने पर उस महात्मा की मान्यता और भी बढ़ गई। फिर क्या था! बार-बार उस साधु की जय-जयकार से

दिशाएँ गूँजने लगीं।

अंतुनी को धिक्कारने वाली वह गर्जना फिर से उठी। उन जय-जयकारों से भी अधिक ऊँची उद्दंड आवाज़ सुनाई दी, "अरे रे, भीरुओं के समूह में कायरता को ही पुरुषार्थ कहने वाले महात्मा की जय-जयकार! वाह! वाह!! अकर्मण्यता को ही सत्कर्मों का रूप देकर जनता में अकर्मण्यता की बची-खुची शर्म को भी नष्ट करने वाले की जय-जयकार! यह या तो कायरों को प्रिय होगा या अत्याचारी क्रूर पुर्तगालियों को! फिर वह अजात-शत्रु हा जाए तो इस देश में क्या आश्चर्य! बल के भरोसे चोरों को पकड़कर सज़ा देने के कारण क्या हम नरक के अधिकारी बन जाएँगे। ऐसा उपदेश देने वाला महात्मा क्या चोरों का जगद्गुरु प्रतीत नहीं होता। क्या कमाल है इस साधु का! शत्रु की क्रोधाग्नि से जलने वाले घरों को बुझाने के बजाए यह महात्मा यहाँ हमारे चूल्हे की रही-सही आग भी बुझाने आया है! अहा सद्गुरु! धन्य है तू! अभी तक तो सबकी नस-नाड़ियाँ ठंडी पड़ी थीं और अब कहीं शरीर में कुछ-कुछ गर्मी आने लगी थी। किन्तु उस थोड़ी-सी गर्मी से ही तेरा कोमल हृदय दहल गया। किन्तु हे महात्मन्! जो मशाल आग भड़काती हुई अंधाधुंध मंदिरों, अट्टालिकाओं और मानवों को जलाकर भस्मीभूत कर रही थी, उनकी हिंसा का दाह तुम्हें थोड़ा भी कष्ट नहीं दे रहा। दे रहा हो तो जा! पढ़ा उन दुष्टों को अहिंसा की श्रेष्ठता, लेकिन उनका विरोध करने पर क्या तू जीवित भी रह सकेगा। अहिंसा और अप्रतिकार का पुराण उन क्रूर भेड़ियों को सुनाने के बजाय इन गरीब बकरियों को क्यों बता रहा है? हे साधु, तुझ में कोई बल है तो पहले यह जो अत्याचारी, लोगों का संहार करने वाले दुष्ट, भूखे भेड़िए हैं, उन्हें अपना हाथ रोकने के लिए कह और उसमें सफल होने पर फिर अत्याचार के शिकार इस ब्राह्मण को और ज़ोर-ज़बरदस्ती से भ्रष्ट की गई हमारी माँ-बहनों को प्रतिशोध का भाव छोड़ने का उपदेश कर।"

यह भाषण सुनकर अपनी शांत-वृत्ति स्थिर रखते हुए साधु बोला, "अरे रे, बिल्कुल अज्ञानी बालक की तरह ही यह सारी बात है। ये आततायी अत्याचारी नहीं हैं। अरे, इनके रूप में प्रत्यक्ष भगवान ही

हमें अपने पूर्वकर्मों का फल दंड रूप में दे रहे हैं।"

"वाह, साधु महाराज ! कौन उत्तम युक्तिवाद है।" फिर से उसी कोने से हँसी के साथ वाणी गूँज उठी, "इस तुम्हारे युक्तिवाद के अनुसार ऐसा क्यों न कहा जाए कि हमारी इस प्रतिशोध-भावना के रूप में ही भगवान इन भेड़ियों को सज़ा देना चाहता है। अजी महाराज, लोगों का धन हरने के लिए चोरों की नियुक्ति भगवान करते हैं तो क्या उन चोरों को पकड़ने के लिए भगवान सज्जनों को प्रेरित नहीं करता ?"

और फिर अधिक ऊँचे स्वर से उस कोने की आवाज़ ने कहा, "भाइयो ! देखते क्या हो ? चलो आगे बढ़ो। दौड़कर टूट पड़ो। एक भी जिन्दा न बचे। ये तीस कोई राक्षस तो नहीं हैं। और आप तीन सौ कोई नपुंसक भी नहीं हैं। चलो मारो, बोलो, हर-हर महादेव !"

उस गर्जना की प्रतिध्वनि दूसरे कोने से भी उठी—'हर-हर महादेव।' यह रण-घोष सुनते ही तत्काल अंतुनिया के सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। आज पहली बार ही पुर्तगाली अंतुनिया ने वह प्रति-आह्वान देने वाली रण-गर्जना सुनी थी।

: ७ :

भारत भूमि की तलाश में पूर्वी अमेरिका और अफ्रीका को खोजते हुए जिस दिन पुर्तगालियों का जहाज़ भारत पहुँचा, उस दिन से आज तक उन पुर्तगाली आक्रामकों ने 'हर-हर महादेव' की ऐसी रण-गर्जना कहीं भी न सुनी थी, पुर्तगाली पेरू, मैक्सिको, ईरान आदि अनेक देशों में गए। अनेक छोटे-छोटे द्वीपों में भी उनका फ़ारसी हब्शी लोगों से भी सम्पर्क आया, लेकिन इस प्रकार की रण-गर्जना आज पहली बार ही उन्होंने सुनी थी। सह्याद्रि की गुप्त गुफाओं से निकल एकाएक अपने शिकार पर झपटने वाले इन नर-सिंहों की गर्जना से मानो मूरों का 'दीन' अब दीन-हीन हो गया था। पुर्तगालियों ने पहली बार ही इसे सुना था, अतः उनके तीर अपना लक्ष्य-वेध करने से असमर्थ सिद्ध हो रहे थे, खड्ग कुन्दन हो रहे थे; इस भारत को कोलम्बिया बनाने के मानो उनके सारे मनोरथ ढीले पड़ रहे थे। यह 'हर-हर महादेव' की घोषणा पहली बार सुनी और सुनने के बाद से ही उनके हृदय में

काँटे-सी चुभने लगी।

रण-गर्जना की चिनगारी से अंतुनिया के अन्तःकरण में एक भय-ज्वाला उठी। एकाएक उसने आज्ञा दी—"सैनिको! जाओ, उन विद्रोही-गर्जना वाले पाखण्डियों को पकड़ लो। चलो, सशस्त्र टूट पड़ो और सारी भीड़ को खदेड़ कर आगे घुसो।"

आज्ञा मिलने की ही देर थी कि तीस में से बीस सैनिक शिकारी कुत्तों की तरह उस निशस्त्र भीड़ पर टूट पड़े। मार्ग में पड़ने वाली बाला—वृद्ध स्त्रियों को संगीनों से चीरते-फाड़ते वे आगे घुसने लगे। लोगों का धैर्य कितनी देर टिकता। उन्हें हतप्रभ हो जैसे भागना भी भूल गया था। बेचारे जहाँ थे, वहीं ज़ख्मी होकर गिरने लगे।

आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े शेष दस सैनिकों को अन्तुनी ने आज्ञा दी, "इस पापी ब्राह्मण को वृक्ष से बाँधकर जीवित जला दो। अब न्याय-विभाग समाप्त हो गया। जल्दी करो, दण्ड-आज्ञा पालन अविलम्ब होना चाहिए। यह स्त्री, यह बालक और ये सारे वन्दीजन, डालो इनके पैरों में बेड़ियाँ और ले जाओ इन्हें गुलामों के बाज़ार में बेच डालने के लिए। अभी इन्हें चौकी में बन्द रखो।

इस पर रमा को अपने बूट की ठोकर से धकेलते हुए कहा, "ओ कुलटे! चल उठ!" शेष बंदियों से भी गुर्रा कर—"चलो रे।"

एकाएक दो तीर साँयऽऽऽयँ करते हुए आए और उन सैनिकों में से दो वहीं ज़मीन पर लुढ़क गए। खून से लथपथ। सभी सन्न रह गए। कहाँ से आए ये तीर। चबूतरे के पीछे थोड़ी दूर पर एक वीरान मकान था, जिसे लोग भूत-प्रेतों का डेरा मानते थे। तीर शायद उसी मकान से आए थे। पर किसने छोड़े थे वे तीर। क्या भूतों ने? क्यों कि किसने छोड़े, यह तो किसी ने भी देखा न था।

सैनिकों के गिरते ही अन्तुनी ने आज्ञा दी, "जल्दी चौकी में घुसो।" और उसी क्षण वन्दी लोगों को हथकड़ियों सहित खींचते हुए वे सैनिक चौकी में घुस आए। चौकी वाले सैनिकों को संकट में देखकर भीड़ पर झपटने वाले सैनिक भी अपनी रक्त-रंजित संगीनों के साथ वापस चौकी की ओर लौट पड़े।

सैनिकों को वापस लौटते ही उसी गर्जना वाले कोने से एक छोटे-

से गुट ने आगे बढ़ लौटते हुए शत्रु की पीठ पर हल्ला बोल दिया। और भूतों वाले घर से भी कोई भूतनाथ 'हर-हर महादेव', 'जय हर' आदि गर्जना करता हुआ अपने साथियों समेत उस चौकी पर टूट पड़ा। उसके हाथ से तीर-पर-तीर चल रहे थे।

अन्तुनी ने तुरन्त चौकी के चारों ओर सैनिकों की मोर्चाबन्दी करवाई और गरज कर बोला, "चलो ! इन अपराधियों का यहीं इस आँगन में जला दो। चलो, जल्दी करो ! यह भगवान की आज्ञा है। इसका पालन होकर ही रहेगा। यह कायर हिन्दू तो क्या ! यदि इनके पितर भी ऊपर से उतर आएँ तो यह दण्ड अब नहीं टलेगा। लाओ, जल्दी आग जलाओ।"

तुरन्त ही चौकी के किवाड़ चौखटें आदि को उखाड़ कर वहीं आँगन में चिता रची गई। बारूद और तेल डाला गया और जिस प्रकार मुर्दे को कर्तव्यपूर्वक अर्थी पर बाँध देते हैं, उसी प्रकार उन पुर्तगालियों ने माधव—गरीब ब्राह्मण को उस चिता पर जीवित ही बाँध दिया। आग भड़क उठी।

एक आर्त पुकार उठी, "मुझे भी जला दो, मेरे बच्चे को भी जला दो, किन्तु इन्हें न जलाओ। मैं अपना वचन वापस लेती हूँ।" रमा की इस चीख-पुकार पर एक तलवार की मूठ का प्रहार उसके मस्तक पर भी हुआ और वह बेहोश होकर खून से लथपथ अवस्था में ज़मीन पर गिर पड़ी।

चिता भड़कती जा रही थी और भड़कती हुई ज्वालाएँ लोगों को युद्ध के लिए मानो ललकार रही थीं। इस हाहाकार के वातावरण में से फिर गर्जना उठी। क्षण-भर में वह समूह चौकी की ओर बढ़ने लगा।

अन्तुनी का संकेत पा पुर्तगाली सैनिक पुनः भीड़ पर झपट पड़े। वे खूनी संगीनें जब लोगों को पीछे धकेलने लगीं तो भीड़ एक-दूसरे पर गिरती हुई फिर पीछे सरकने लगी। एक-दूसरे पर गिरते हुए एक भगदड़ का-सा दृश्य बन गया। गोरे सैनिकों की टुकड़ी को भीड़ के साथ उलझा हुआ देखकर तीन हिन्दू वीर उस भयंकर कोलाहल में भी सीधे चौकी पर आ झपटे। छप्पर पर चढ़, छप्पर को ही फाड़ दिया और चौकी के बीच में कूद पड़े। तलवार-से-तलवार भिड़ गई।

खड्गों की खनखनाहट शुरू हुई। अंतुनी स्वयं अपने दो गोरे सैनिकों को साथ ले उनसे जूझ पड़ा। इस हाथापाई में वन्दियों के रस्से काट दिये गए और वे सब मुक्त हो माधव को मुक्त कराने दौड़े। किन्तु हाय! अब तो चिता से अर्द्ध-दग्धावस्था में वाहर निकालना अधिक यातनामय है। सारी नाड़ियाँ फटकर रक्त की उष्ण धाराएँ वह रही थीं। माँस जल रहा था और हड्डियाँ तड़-तड़ फूट रही थीं। अब माधव में वचाने लायक क्या वचा था। वह केवल अर्द्ध-दग्ध हवि-मात्र रह गया था। उसका छुटकारा अव सम्भव भी नहीं था। अव सम्भव था उसकी मृत्यु का वदला······वदला।

और इस भाव के आते ही उस वीर की खड्ग का हाथ एकाएक अन्तुनी पर उठा। अन्तुनी के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करने वाला खड्ग गिरने ही वाला था कि······वह साधु, वह महात्मा अन्तुनी के शरीर पर गिर पड़ा और चिल्लाकर वोला, "अरे, हिंसा मत करो! यह अन्तुनी तो अव केवल गाय है। छोड़ो इसे! इसकी हत्या करना अव उचित नहीं है। अरे, इसका खून और तुम्हारा खून, इसमें क्या अन्तर है? इस प्रकार कसाई के समान और कृत्य तुम क्यों कर रहे हो? छोड़ो, छोड़ो इसे।"

साधु का यह व्यवहार देखते ही वह भूतनाथ क्रोध से भड़क उठा, छोड़ ओ पाखण्डी! छोड़ इसे! नहीं तो इस म्लेच्छ के साथ ही तुझे भी चीर डालता हूँ, अरे! इस कसाई अन्तुनी के रक्त की तो तुझे इतनी दया आ रही है और उधर उस चिता में ब्राह्मण का जलने वाला रक्त क्या जोहड़ का गंदा पानी है।"

किन्तु उस महात्मा पर इन शब्दों का कुछ भी परिणाम न हुआ। उल्टा चिड़िया जिस प्रकार अपने वच्चों को अपने परों से ढक लेती है, उसी प्रकार उसने अपने शरीर की ढाल वनाकर अन्तुनी को ढक लिया।

क्या कहा जाय साधु के इस व्यवहार को? क्या कहा जाय उस महात्मा को? भ्रम में पड़ा हुआ कहें या अभिमान में? यह दम्भ है या दया? कैसी है उसकी यह प्रतिज्ञा—'सवके मन में दया भाव उत्पन्न करूँगा, सवका क्रोध शांत करूँगा।' परन्तु ये सव किसकी

रक्षा में ? उस राक्षसी अंतःकरण वाले अन्तुनिया के लिए !

भूतनाथ क्रोध से भड़क उठा था, परन्तु उस क्रुद्धावस्था में भी अपने कथन के अनुसार साधु को मारने का साहस उसको भी नहीं हुआ। इधर लोगों की भीड़ पर टूट पड़े हुए गोरे सैनिक भीड़ को तितर-बितर कर चौकी के दरवाज़े पर फिर से आ गए।

हाथ में आया हुआ शिकार छूटने पर सिंह जैसे क्रोधित हो चिढ़ कर वार-वार पूंछ ज़मीन पर पटकता है, उसी प्रकार वह भूतनाथ मन-ही-मन बेचैन हो रहा था। पर क्या उपयोग ? अव पुर्तगाली सैनिक लौट रहे थे, अतः लौटना ही उचित है, यह सोचकर उन्होंने अपने कदम पीछे हटाए। पहली झड़प में अन्तुनी के दो साथी सैनिक मारे जा चुके थे। इस वीराग्रणी का मठ में पकड़ा गया साथी भी अव मुक्त हो चुका था। अतः पुनः उचित अवसर में शत्रु को परास्त करने के लिए वे तीनों वीर पीछे हट आए।

उन वन्दियों के साथ ही वह सेठ भी छूट गया था, जिसे माधव का संरक्षक कहकर पकड़ा गया था। छूटते ही थोड़ी दूर तक वह वेचारा जैसे-तैसे भागा, लेकिन भागता-भागता काफी घवरा गया। अन्त में शेर को देखते ही गाय जैसे एकदम घुटने टेक देती है, वैसे ही वह एकाएक नीचे वैठ गया। अपनी उस तोंद की ओर देखकर ज़ोर-ज़ोर से साँस लेता हुआ वोला—"अरे रे, पेट ! आजन्म तुझे जिसने पाला-पोसा, उसी का ऐन मौके पर तूने घात किया। हे पेट ! तुझसे अति कृतघ्न और कौन हो सकता है ? अरे, तेरा अच्छा पोषण किया तो हे दुष्ट, तू ही उलटकर छाती पर चढ़ जाता है। अगर तुझे भूखा मारा जाय, तव तो तू पीठ से लग जाता है।" इस प्रकार वह हाँफता हुआ अपनी विशाल तोंद को दोष दे रहा था कि इतने में पुर्तगाली सैनिकों ने इस वेचारे को आ घेरा और खींचकर चौकी में ले गए। पुण्याई समाप्त होने पर प्रायः ऐसी ही सज़ा मिलती है।

: ८ :

उस साधु की हठधर्मी के कारण जब हाथ में आया हुआ अन्तुनी उसके प्रहार से वच निकला तो वह वीराग्रणी मन-ही-मन सोचने लगा कि शायद पुण्याई के क्षीण होने का ही यह दण्ड है। शायद यही संसार

का न्याय है। एक ओर मठ में शत्रु के हाथ में लगकर भी मेरा साथी सुरक्षित छूट गया, उसमें नया चैतन्य आ गया और दूसरी ओर अन्तुनी—इस सारे हत्याकाण्ड का सूत्रधार, मेरे हाथ आकर भी बच निकला। हाय ! शायद उसके पुण्य अभी बाकी थे। रह-रहकर उस वीराग्रणी के मन में यह विचार उठ रहे थे।

इस मन-क्षोभ की अवस्था में वह कहाँ जाए, यह भी उसको सूझ नहीं रहा था। इधर उसके हाथ से अन्तुनी छूट गया था, उधर संगीनों का खूनी हमला होते ही लोग प्राण बचाने के लिए दशों दिशाओं में भागे। कुछ ज़ख्मी होकर रास्ते में ही गिर पड़े, तो कोई शत्रु से भिड़कर भी मरे। इस भाग-दौड़ के कारण ही उस वीराग्रणी की जन-भावनाओं को जगाकर अत्याचारी शत्रु से बदला लेने की योजना सफल न हुई। परन्तु इस प्रकार का लोक-क्षोभ को प्रचण्ड करने का प्रयास पूर्णतया निष्फल हुआ, यह भी नहीं मानना चाहिए। क्योंकि आज पहली ही बार अन्तुनी को हिन्दुओं की प्रत्याघाती खड्ग का पानी चखने को मिला। हर-हर महादेव की उनकी रण-गर्जना से गोमान्तक के लोग एक नई अनुभूति से रोमांचित हुए। और उसी आवेश में आज पहली बार उन्होंने शत्रु का रक्त बहाया था। उसके कारण हिन्दू रक्त भी बहा था, परन्तु गोमान्तक में जो आज तक रणदेवी केवल हिन्दू रुधिर-पान से ही तृप्त हुई थी, उसी ने आज पहली बार केवल हिन्दू रक्तपान से तृप्त न होकर म्लेच्छों के रक्त का स्वाद भी चखा था। गोमान्तक के इतिहास में इस नए अध्याय को शुरू करने का श्रेय आज की इस झड़प को प्राप्त है। इसीलिए वह पूर्ण निष्फल हुई, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

मध्याह्न तक इस झड़प में पुर्तगीजों के सात सैनिक मारे गये। स्वयं अन्तुनी भी शायद न बच पाता। किन्तु हाय ! उस घटना का स्मरण होते ही अपनी भूल उस वीराग्रणी को चुभने लगी। एक अन्तुनी मारा जाता तो सिर काटते ही जिस तरह धड़ अपने-आप गिर जाता है, उसी प्रकार पुर्तगाली सेना का पराभव हो जाता। और इस वार्ता का विद्युत्-स्पर्श होते ही प्रान्त-भर में सारी जनता एक नए साहस, नए चैतन्य से भर उठती। जिन्होंने धर्मग्रन्थों के पठन के अतिरिक्त

कुछ नहीं किया और जीवन-संग्राम में आज तक खड्ग हाथ में नहीं उठाया, उन्हीं के हाथ में शत्रु-नाश के लिए पल-भर में सैकड़ों तलवारें चमक उठतीं।

शत्रु को धोखा देकर भागते समय उस वीराग्रणी के मन में कुछ समय तक इस प्रकार के विचार उठ रहे थे कि इतने में उस गाँव का युवक मल्ल सामने आ खड़ा हुआ, जिससे अभी पहले भेंट हुई थी। 'भूतनाथ की जय' कहकर उस वीराग्रणी की जय-जयकार करते हुए वह हँसकर बोला, "हे वीर श्रेष्ठ! उस भूतगृह से अकस्मात् बाहर आकर पुलिस चौकी पर छलांग लगाते हुए देखकर हरएक तुमको भूतनाथ कहकर पुकारने लगा है। धन्य है तुम्हारा पराक्रम।" इस पर वीराग्रणी ने बड़े दुख-भरे शब्दों में उत्तर दिया, "मित्र! यह मेरा मान नहीं, मेरे साथियों का अपमान है। अरे, जो कृत्य हम हिम्मत से कर नहीं पाते, उन्हीं को लोग देवताओं का या भूतों का कृत्य मानते हैं। इस प्रकार के साहस को पराक्रम मानकर स्तुति करना अपनी अक्षम्य भीरुता ही प्रकट करना है। अरे रे! गोमान्तक में यह भीरुता, यह गुलामी वृत्ति देखकर तो बड़ा ही आश्चर्य होता है। महाराष्ट्र के अन्य क्षेत्र में तो स्त्रियाँ भी ऐसा साहस प्रकट करती हैं। यही घटना अगर अन्य कहीं घटित होगी तो वहाँ ३०० स्त्रियाँ भी इन तीस शत्रुओं से कभी हार न खातीं।

उसका यह भाषण सुनकर उसी का साथी बोला, "क्यों जी, यह गोमांतक का रक्त क्या हमारे राष्ट्र के रक्त का ही प्रवाह नहीं है। वही देश, वही जाति; रक्त और नसें भी वही। ऐसा ही यह एक-बीज होने पर भला यह भेद क्यों?"

वीराग्रणी ने उत्तर देते हुए कहा, "अरे भाई! क्या गोमांतक और क्या महाराष्ट्र, दोनों में मूलत: कोई भेद नहीं, इस ऊपर से दिखने वाले भेदों का कारण है नेतृत्व। वहाँ श्री समर्थ रामदास-जैसे धैर्य-शाली सन्त समाज को शिक्षा दे रहे हैं, और यहाँ हैं यह शान्ति-ब्रह्म भोलेनाथ महात्मा। इन्हें यहाँ के लोग इतना मानते हैं। परन्तु यह महात्मा विश्वासघात को ही सत्य समझते हैं। और हिंसकों को हिंसा करने देना ही इनकी अहिंसा है। इस प्रकार के अमंगल कार्य करने

देने वाले को यहाँ के लोग साधु मानते हैं। कैसी है यहाँ के लोगों की अन्ध-भक्ति। पागल कुत्तों को मारने की अपेक्षा उन्हें लोगों को काटने के लिए खुला छोड़ना ही इन्हें दया मालूम होती है। अरे! इनकी अन्ध-भक्ति को जनमोचनी भवानी (तलवार) और डाकू की छुरी का भेद भी समझ में नहीं आ रहा है। इन लोगों की इस वृत्ति को अन्धापन न कहें तो क्या कहें। अरे, जहाँ सूर्य के प्रकाश के समान स्वरक्षण का मार्ग भी लोगों को न दिखाई दे और स्वहत्या का ही मार्ग उचित दिखाई दे, उस वृत्ति को अन्धापन कहने में क्या गलती है ?

"हाय रे, भारत ! यह तेरी पूर्वजों के नाम पर अपनी अक्ल का बड़प्पन दिखाने वाली वृत्ति, यह तेरा बावा वाक्यम् प्रमाणम् का तत्वज्ञान और यह तेरी कूपमण्डूकता, ये तेरे दुर्गुण तेरे लिए घातक तो हैं ही, किन्तु उससे भी अधिक तेरे सद्गुण तेरे लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। क्योंकि वास्तव में ये सद्गुण न होकर उनका आभास-मात्र हैं। जिनके कारण वह न केवल संसार को अपने पर आघात करने का निमन्त्रण देता है, बल्कि दुष्टों की शक्ति को भी इससे पर्याप्त बल मिलता है।"

उस वाग्प्रवाह को किंचित् रुकने पर वह नवमल्ल बोला, "आप जो कहते हैं वह बिल्कुल सत्य है। अभी देखिए, जब आपने 'हर-हर महादेव' की गर्जना की तो लोगों में कैसा उत्साह जाग्रत हुआ था। शत्रुता पर टूट पड़ने की उनकी प्रेरणा जागी थी। किन्तु वही लोग बाद में साधु का भाषण सुनकर उसी का कथन सत्य मानने लगे। बस उस साधु की दीन वाणी से उनके मन द्रवित हो उठे। उन्हें लग रहा था कि इस साधु पर भगवान प्रसन्न हैं। इसलिए यह कुछ-न-कुछ अद्भुत चमत्कार कर सबको निश्चित ही मुक्त करेगा। कैसी है यह भोली श्रद्धा ?"

इतने में सहसा उसकी दृष्टि उस पुलिस चौकी की ओर गई। वह एकाएक चिल्लाया, "हाँ, चमत्कार तो यह प्रत्यक्ष ही दिख रहा है। देखिए, सर्वनाश हो गया। यह तो सारी चौकी ही भड़क उठी है। मुझे लगता है क्रूरकर्मा पकड़े हुए लोगों को ज़बरदस्ती जला रहे हैं।"

किंचित् रुककर वह वीराग्रणी बोला, "हाँ, मित्रघात तो अवश्य

हुआ है, परन्तु सर्वनाश नहीं। अरे, वह देखो, घुड़सवार—अपने मराठा वीर भी अपने बन्धुओं की सहायता के लिए आ रहे हैं। चलो जल्दी करो, बोलो—हर-हर महादेव।"

उन घुड़सवारों को देखते ही वह मल्ल युवक, उसके साथी तथा वीराग्रणी और उसके साथी ने पुनः उत्साहित हो 'हर-हर महादेव' की गर्जना की। और उधर से वीराग्रणी का साथी जो कल संदेशवाहक था, आज दस घुड़सवारों के साथ भाले चमकाता हुआ आ गया।

"सँभाल रे, अन्तुनी! अब सँभाल अपने को। ज़रा सामने तो आए। अब देखें, सहस्र नरमेघ का पुण्य तेरी कैसे रक्षा करता है।" इस प्रकार की गर्जनाएँ करते हुए मराठी सेना ने तत्काल तीर के वेग से उस चौकी पर हमला बोल दिया।

जैसे ही वह टुकड़ी आगे बढ़ी, उन्हें एक ओर जलते हुए माँस की भीषण दुर्गन्ध आने लगी, और दूसरी ओर जलने वालों की भयंकर चीत्कारपूर्ण कराहें उनके कानों में पड़ने लगीं। कितना मर्मभेदी था वह चीत्कार!

पुराने जमाने में यज्ञकुण्ड की रक्षार्थ जैसे क्षत्रिय वीर जूझा करते थे, वैसे ही कलियुग में इस हत्याकुण्ड का रक्षण करने के लिए पुर्तगाली सिपाही जूझने लगे। मराठे और पुर्तगाली आमने-सामने भिड़ गए। पुर्तगाली, जिन्होंने भिन्न-भिन्न समुद्रों का पानी चखा हुआ था और सैकड़ों खड्गों से लड़ने का अनुभव लिये हुए थे, अपनी कीर्ति के अनुरूप ही लड़ने लगे। मरे विना अथवा जख्मी होकर गिरे विना एक भी पुर्तगाली सैनिक वहाँ से हटा नहीं। किन्तु फिर भी मराठों के सामने अन्त तक वह न टिक सके। पुर्तगाली सैनिकों का प्रतिरोध समाप्त कर मराठा वीरों ने जलती चौकी से लोगों को बचाने के लिए अन्दर प्रवेश किया। किन्तु हाय, अब बहुत देर हो चुकी थी। क्या पाप, क्या पुण्य? क्या भला, क्या बुरा? निष्पक्ष अग्नि के मुख से कौन बच सकता था।

काल के प्रवाह में जैसे धुँधली-सी स्मृति बची हो, उसी प्रकार उस अग्नि-कुण्ड से एक शिक्षक-मात्र मानो सारी घटना सुनाने के लिए ही बचा था।

उन वीरों का सारा शौर्य व्यर्थ ही रहा। सव वन्धु जलकर भस्म हो गए थे। किन्तु वह अन्तुनी कहाँ है ? कहीं वह भी अकस्मात् वहीं जलकर भस्म तो नहीं हो गया। वह भस्म भी किस कारण हुआ होगा। उस शान्ति-ब्रह्म साधु के अभिशाप से या अपने ही पापों से ? जैसा भी हो यदि वह हज़ारों की हत्या करने वाला क्रूरकर्मा जल गया हो, तव तो यह सुवन्धुओं का वलिदान सार्थक हुआ, ऐसा भी कहा जा सकता है। क्योंकि इस एक का मरना हज़ारों के लिए मानो जीवन-दान ही है। "कहाँ है वह नीच अन्तुनी ?" वीर के इस प्रश्न का उस भीषण परिस्थिति में भी उस शिक्षक ने हँसते हुए उत्तर दिया, "नहीं-नहीं, हे मित्र, इस प्रकार अभिशाप से कोई मरा नहीं करते। अगर वैसा होता तो वह कभी का मर गया होता। पाप से कोई मरता नहीं है। संसार में पाप क्या स्वयं होकर किसी को जलाता है। पापों को कोई सुलगाने वाला, कोई चिंगारी लगाने वाला हो, तभी तो वे जलते हैं।

"अरे, वह अन्तुनी नहीं जला। चला गया ! वह सुरक्षित चला गया ! हम सवको अपने हाथों अग्नि में समर्पित करके विलकुल सुरक्षित निकल गया।"

"क्या उसका हित करने वाले उस साधु को भी उसने जला दिया ?" वीर ने प्रश्न किया।

"अरे, उसने भला किया इसलिए उसको तो उसने सवसे प्रथम अग्नि में स्वाहा किया। ऐसा करते हुए वह दुष्ट उस साधु को कह रहा था, 'अरे महात्माजी, यद्यपि लोग तेरी पूजा करते होंगे, तो भी तेरे-जैसा कायर आदमी कभी कोई पहले नहीं देखा। अरे, तू अपनी जान वचाने के लिए कोई प्रत्याघात न करे, ऐसा वार-वार उपदेश देता रहा। किन्तु अरे पाखण्डी ! हम पापी हैं और भगवान हमें दूसरे लोक में अवश्य दण्ड देगा, ऐसा संकेत से वताने में तुझे शर्म नहीं आई। तेरी इस कायरता के कारण तेरा प्रभाव जो लोगों पर था, वह मेरे लिए लाभदायक ही सिद्ध हुआ, किन्तु कल तेरा वह प्रभाव हमारे लिए नाश का कारण वन सकता है, यह मैं न समझ सकूं ऐसी अन्धी मेरी दया-वुद्धि नहीं हुई है।' ऐसा कहते हुए अन्तुनी ने उस साधु को जिसको कभी भी क्रोध में नहीं देखा गया था, उस शान्त स्वरूप

साधु को अपने हाथों अग्नि की भेंट किया। देखिए, मैंने प्रतिकार किया तो मुझे भी अग्नि में जलाया और जिसने हमें प्रतिकार से रोका, उस मुनि को भी उसने जलाया। कैसा है यह विचित्र न्याय ?

"बाद में वह अन्तुनी अपने सैनिकों की ओर मुड़कर बड़े गम्भीर शब्दों में अपनी नीति समझाने लगा कि, 'बुद्धिमान माली फलहीन और सूखे वृक्षों को ही जलाता है, तथा जिन वृक्षों को शत्रु के खेत से उखाड़ कर अपने खेत में नहीं रोपा जा सकता, उन्हें भी जलाता है। किन्तु जिन फले-फूले वृक्षों को वह अपने खेत में अनायास रोप सकता है उन्हें कभी नहीं जलाता। इसी प्रकार स्त्रियाँ भले ही भ्रष्ट हों, तो भी उन्हें पुरुषों के समान जलाना नहीं चाहिए। इसलिए हे सैनिको! इस स्त्री को तथा इस बच्चे को बन्दी बनाकर इसी क्षण शत्रु के पुनः हमले से पहले ही गोवा ले चलो।

'अरे, मूरों का उदाहरण तुम्हारी आँखों के सामने क्या नहीं है ? जीते हुए शत्रु से मूरों ने धन के रूप में नहीं प्रायः स्त्रियों के रूप में ही कर वसूल किया है। उसी प्रकार अबोध कोमल बालकों को गुलाम बनाकर ले जाना उनकी नीति रही। और इस तरह से गुलाम किये हुए ग्रीकों के बच्चे, 'हम ग्रीक हैं' यह न जानते हुए अपने बाप-दादाओं को ही शत्रु समझने लगे। वही ग्रीक बालक वयस्क होकर ग्रीकों के ही गले काटने लगे। उसी-जाँनिसारी के बल पर इस्लाम विजयी हुआ। जीती हुई स्त्रियों का वंश ही करोड़ों में बढ़ गया। इस नीति से ही तो संसार में इस्लाम पुष्ट हुआ। और सैनिको ! हमने भी गोवा में पाँव रखते ही मूरों की तरह तरुण स्त्रियों तथा बच्चों-समेत इन्हें गुलाम बनाकर ईसाई-धर्म की दीक्षा दी और आप देख ही रहे हो कि उनकी वह सन्तान हमसे भी अधिक ईसाई-धर्म की अभिमानी है।'" इस प्रकार वह शिक्षक अन्तुनी के कृत्य का विवरण बताता हुआ आगे कहने लगा—"उस अन्तुनी ने साध्वी रमा और उसके पुत्र को उसी क्षण ज़बरदस्ती घोड़े पर बांधकर अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि जब तक ये पकड़े हुए कैदी जलकर राख नहीं हो जाते, तब तक इस जलने वाली पुलिस चौकी पर तुम पहरा दो।

"उसके बाद अन्तुनी ने दो सैनिक साथ लेकर घोड़े पर सवार होकर घोड़े को एड़ लगाई। और इस प्रकार वह टेढ़े मार्ग से चलने वाला अन्तुनी अब भी अपने टेढ़े तरीकों से विजयी होकर ज़िन्दा निकल गया। पग-पग पर ईसा मसीह का उपदेश अपने पैरों के नीचे कुचलने वाला वह क्रूरकर्मा विजयी सिद्ध हुआ और वह प्रत्यक्ष यीशु की तरह आचरण करने वाला महात्मा साधु बेचारा जीवित ही जल मरा। और अगर इस वीराग्रणी ने शत्रु का प्रतिकार न किया होता तो सारा गाँव ही उस साधु के साथ जीवित जला दिया जाता।"

शरीर के अग्नि-दाह से पीड़ित होते हुए भी, हल्का-हल्का श्वास लेकर कराहते हुए शिक्षक बता रहा था और सब लोग भक्ति-भाव से उसके चारों ओर भीड़ जमा करके खड़े थे। वह फिर बोला, "ग्रामस्थ जनो! अगर ये वीर विरोध करने के लिए न आते, तब तो अन्तुनी ने सारा गाँव या तो जला दिया होता अथवा सबको धर्मभ्रष्ट कर प्रत्यक्ष अग्नि से भी अधिक दाहक ऐसे पतन की आग में झोंक दिया होता। अजी, आज जैसे एक अत्याचार का अनुभव आपने किया वैसे अत्याचारों से अन्तुनी अनेक ग्रामों को पीड़ा दे रहा है। बन्धुजनो! यह घोर दुःख की कहानी है। ऐसी सैकड़ों दुःख-कथाएँ अभी तक बताई नहीं गई हैं। मेरे बन्धुओ! संसार का न्याय मत भूलना। देखिये, एक गन्ने को पानी दे-देकर पालता है और दूसरा उसे बेलन में पेलकर नष्ट करता है। गन्ना दोनों को समान रूप से मीठा है। दोनों पर ही दया करता है। और दोनों को ही अत्यन्त मधुर रस देता है। किन्तु भाइयो! उसकी उस दया-बुद्धि का फल उसे क्या मिलता है। सारे ही उसे छील-छील कर खाते हैं और बेलन में पेरने वाला व्यक्ति भी रस को पीते हुए कहता है, 'वाह-वाह, कैसा मीठा रस है।' मित्रो! तुम्हारी गति भी उसी ईख की तरह हो, यदि यही तुम्हारी इच्छा है, तब तो बेशक वैसा करो। जाओ! उस एक आत्मा के भुलावे में जल मरो। कौन तुम्हें रोक सकता है, किन्तु यह एकात्मकता का ऋषि-पुनीत मन्त्र आचरण में लाने का सही मार्ग है ऐसा मुझे तो नहीं लगाता। मुझे कंस-वध करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस एकात्मकता का मंत्र आचरण में लाया, वही मार्ग, वही नीति अधिक योग्य, अधिक श्रेयस्कर

प्रतीत होती है ।

"प्यारे भाइयो ! केवल आँसू बहाने से क्या होगा । स्वदेश की दुर्दशा से अगर सचमुच ही तुम्हारा हृदय द्रवित है तो मित्रो ! इन दुर्बलता-द्योतक, अश्रुओं को पोंछ डालो और उस वीराग्रणी के नेतृत्व में 'हर-हर महादेव' की गर्जना करो । और राष्ट्र के वीर भद्र सैनिक बन कर उत्साह के साथ महारण में घुसो और काट डालो उन क्रूर-कर्मियों के सिर ।"

मृत्यु-शय्या पर पड़े उस शिक्षक की वाणी में कितना जोश और आवेश था, किन्तु वह कितनी देर टिक सकता था, जल्दी ही उसका श्वास फूलने लगा । उसकी यह स्थिति देखकर उस हुतात्मा के चरणों में एकत्र वे ग्रामीण बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगे ।

पुनः शिक्षक की अस्पष्ट परन्तु निर्भीक वाणी सुनाई देने लगी, "बन्धुओ ! मेरी एक अन्तिम इच्छा पूरी करोगे ? क्या मुझे एक वचन दोगे ? आइये मुखियाजी, निकट आइए बन्धुजनो ! आप भी आओ और मुझे अन्तिम वचन दीजिए । मित्रो, मेरी आखिरी इच्छा यही है कि इन हुतात्माओं की राख जब तक गरम है, तब से ही इस हमारे ग्राम पर स्वराज्य का अपना हिन्दू-पद-पादशाही का वह महान् ध्वज फहराया जाय । बन्धुओ ! बस इतना ही वचन दीजिए ताकि मैं सुख से अन्तिम श्वास लूं ।"

एक ओर वे सारे ग्रामस्थ फूट-फूट कर रो रहे थे, तो दूसरी ओर उस मृत्यु-शय्या पर पड़े शिक्षक को हाँ-हाँ करते हुए आश्वासन दे रहे थे । मराठा सेना की नई टुकड़ी के अग्र-भाग में जो सवार ध्वज लेकर दौड़ रहा था, जिसे महाराष्ट्रीय वीरों ने अपने प्राणार्पण कर फहराया था—उससे वह हिन्दू-पद-पादशाही का ध्वज उस वीराग्रणी ने लेकर तत्काल उस शिक्षक के हाथ में दिया और कहा, "गुरुवर ! यह देखिए, आपकी इच्छा हम अभी पूरी करते हैं। हे हिन्दू वीर ! पकड़िए हिन्दू-पद-पादशाही का यह ध्वज । ऊँचा उठाइए । इस गाँव पर यह ध्वज फहराने का सर्वप्रथम अधिकार आपके अतिरिक्त और किसको हो सकता है । और तुरन्त वहीं पर ग्राम-मुखिया के साथ सब ग्रामीणों ने हुतात्माओं की गर्म राख को साक्षी करते हुए प्रतिज्ञा की कि आज से

पूर्वजों से पूजित यह हमारी पवित्र भूमि स्वतन्त्र है और प्राण गया तो भी इस पवित्र भूमि पर इन पुर्तगीजों को पाँव नहीं रखने देंगे।"

वीराग्रणी ने वह सारा वृत्त आँसू-भरे नयनों से लिख डाला और इसे पूना में अन्नाजी पंत को भेजने की व्यवस्था की। इसमें उसने राष्ट्रवीर पेशवा श्री बाजीराव को मार्गव ग्राम स्वराज्य में शामिल कर लेने की प्रार्थना की। ग्राम-मुखिया ने उस पत्र पर अपनी मुहर लगाकर हस्ताक्षर किए तथा लिफाफे में पत्र के साथ हुतात्माओं की थोड़ी राख भी रख दी।

मरणासन्न शिक्षक अपने हाथ में पकड़ा हुआ ध्वज धीरे-धीरे नव शिष्य को देते हुए धीमे स्वर में कह रहा था—"देखना, प्राण जाए, तो भी अपना यह ध्वज झुकने न देना। बोलो वीरो, बोलो! हर-हर महादेव! करो पुनः एक बार रण-गर्जना।" लोग एक ओर बार-बार उसके आवेग से शोकातुर हो रहे थे और दूसरी ओर पुनः-पुनः गर्जना कर रहे थे—हर-हर महादेव की। उस हुतात्मा शिक्षक ने भी वह गर्जना अधिक प्रबल करने के लिए अपना आखिरी साँस रोक कर ज़ोर से की—'हर-हर महादेव' और चिरनिद्रा में शान्त हो गया।

उधर वह घसीट कर ले जाई गई हिरणी के समान रमा! उस बेचारी का क्या हुआ होगा। प्रयत्न करने पर भी बेचारी अन्तिम श्वास न छोड़ सकी थी। शायद दुखियों के प्राण भी जल्दी से शरीर छोड़ने में डरते हैं।

बेचारी रमा! उसकी वाणी, निद्रा, भूख, हँसी आँसू—सब-कुछ सूख चुका था। और उसकी अवस्था जीवित शव के समान हो गई थी। गर्मी में सूखी हुई नदी की भाँति उसकी अवस्था थी। पर-पुरुष द्वारा स्पर्शित ऐसी दीन-हीन स्त्री बनी वह अन्तुनिया के घर आई थी। उसका मस्तिष्क भ्रमित हो चुका था। वह पागल की तरह व्यवहार करने लगी थी। वह बार-बार बड़बड़ा उठती, 'हे भाई, चल बता! पुत्र या पति।' कभी तो वह बच्चे को प्रेम से गोदी में लेती, उठाती और कभी अकस्मात् उसको परे धकेल कर छलांग लगाकर दूर भाग जाती। कभी-कभी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगती—'अरे, मुझे जला दो, चाहे तो इस बच्चे को भी जला दो। अरे, इन अग्नि की ज्वालाओं

समेत अपने शब्द भी मैं निगल लेती हूँ ।'

कुछ मास इस प्रकार वन्दीवास सहने के वाद एक वार अकस्मात् वह वन्दीवास से मुक्त होकर गोवा की सड़कों पर चिल्लाती हुई पागल की तरह दौड़ने लगी । इसी तरह घूमते हुए एक वार उसकी दृष्टि में वह काला, नीला सुविशाल गहरा सागर आते ही वह तत्काल उसकी ओर दौड़ी, और 'हाय, हाय ! संसार में इतना पानी होते हुए उस प्रचण्ड जलती आग को मैं देखती ही वैठी रही । वाह ! वाह ! हे सागर, तू तो सैकड़ों आगें वुझा सकता था । तू तो सचमुच भगवान से भी शीतल है, दयाशील है ।' और ऐसा वोलते हुए उसने साड़ी को ऊपर समेट कर उस महासागर में छलांग लगा दी और काल सागर में जिस प्रकार क्षण डूव जाता है, उसी प्रकार वह उस महासागर में अदृश्य हो गई ।

और इस प्रकार वह दीन दुर्दैवी रमा अन्त में शान्त हो गई ।

किन्तु शंकर ? वह जूही का तोड़ा हुआ कोमल फूल ! अरे, रे ! दुधमुँहे वच्चे, माँ के चले जाने पर अव तेरा क्या होगा ?

पूर्वार्द्ध समाप्त

उत्तरार्द्ध

: १ :

शिशिर ऋतु का वह वृक्ष कैसा सूखा हुआ, सब पत्ते गले हुए, हड्डियों का पंजर-मात्र होता है। परन्तु वसन्त के आगमन पर वही वट-वृक्ष पल्लवों से लदा ऐसा शोभायमान होता है कि विश्वास ही नहीं होता कि यह वही सूखा पंजर वट-वृक्ष है अथवा अन्य कोई।

अपने भार्गव ग्राम का कायाकल्प भी इसी प्रकार का हुआ आज दिखाई दे रहा है। बीस वर्ष पूर्व जो भार्गव ग्राम परकीय आक्रमण की लटकती तलवार के नीचे भय-त्रस्त था, हिरन की तरह सदा ही जान मुट्ठी में लेकर चलने वाला यह वही ग्राम है, यह आज कोई याद दिलाए बिना नहीं जान सकता।

आज कोंकण में हिन्दू स्वतन्त्रता-रूपी वसन्त-समीर वह रहा था। और उससे सारा प्रदेश नए कोमल पुष्पों से मानों खिल उठा था। नव चैतन्य से युक्त होकर भार्गव ग्राम भी एक नए सजीव जीवन, नई अंकुरित आशाओं में पल्लवित हो रहा था।

देखो यह उस ग्राम का प्रवेश-द्वार, कैसा मज़बूत लोहे का बना हुआ है। और यह देखो ऊँची दीवार का विशाल परकोटा, मानो किसी भीमकाय शक्तिशाली की फूली हुई छाती के समान शोभायमान हो रहा है।

वैसे तो छोटा-सा ही है यह भार्गव ग्राम, किन्तु आज राष्ट्र-स्वातन्त्र्य से उत्पन्न आत्म-विकास के कारण उसकी दृष्टि का क्षितिज बहुत विस्तृत हो गया है। और इस छोटे-से गाँव के छोटे ही जीवनाकाश में नई आकांक्षाओं की तेजस्वी तारिकाएँ उदित हुई हैं। आज यहाँ पड़ोस के किसी ग्राम में हुए दंगलों की चर्चा उतनी नहीं होती है, जितनी कि दिल्ली में चलने वाले राजनीतिक दंगल की, क्योंकि आज

यहाँ के कितने ही जवान मराठों की फौज में प्रविष्ट होकर दूर-दूर के रणांगन में अपनी तलवार का पानी दिखा रहे हैं। उसी प्रकार कितने ही तरुण मराठों के समुद्री वेड़े में शामिल होकर समुद्री लड़ाई में अपनी तलवार चमका रहे हैं।

और क्या याद है वह हुतात्मा (आचार्य) ? उसी का एक पुत्र अव वेदशास्त्र-सम्पन्न होकर काशी से लौटा है। वह तरुण पंडित उसी गुरु-गृह में वैदिक पाठशाला चला रहा है। पहले से कई गुना उस पाठशाला की प्रगति हुई है।

और यह हैं भार्गव गाँव के पटेल। देखो, उनकी वह मूँछें, ग्रामवासियों के मन में आदर और शत्रुओं के दिल पर धाम विठाती हैं। इन पटेलजी को पहचाना? नहीं, अव वीस वर्ष पश्चात् कैसे पहचाना जाये? किन्तु उनकी उन मूँछों को ज़रा भूल जाइये तो पहचाने जाते हैं। अरे, यही तो है वह अपना मल्ल युवक, जो उस वीराग्रणी के साथ अन्तुनी से लड़ा था। हाँ, अव ठीक पहचाना आपने! उसी मल्ल युवक को पेशवा ने इस ग्राम का पटेल वना दिया है।

यह देखिये वल-भीम का प्रचंड मन्दिर! यहीं तो था वह छोटा-सा अखाड़ा। देखिये, अव कैसा उसका काया-पलट हो गया है। सुनिये, इस मन्दिर के नगाड़े को और घण्टानाद को। ये घण्टे और ये नगाड़े अव यहाँ हर घड़ी वजते रहते हैं। उसी प्रकार घुड़सवारों का यह दल भी सदैव पहरे पर रहता है।

किन्तु इस कालावधि में इस मन्दिर की अपेक्षा एक अधिक प्रचण्ड चीज़ का जन्म हुआ है, वह है हिन्दू हुतात्माओं की स्मृति में उनके दहन-स्थान पर वनी हुई अति भव्य समाधि। इस समाधि के मण्डप आदि के लिए स्वयं पेशवाओं ने ज़मीन आदि का प्रवन्ध कर दिया और अग्रसर होकर समाधि-स्थान पर मेला प्रारम्भ करवा दिया। अव प्रति वर्ष वह मेला यहाँ लगता है।

भार्गव ग्राम का पिछले वीस वर्षों में आमूल-चूल परिवर्तन हो गया है। किन्तु क्यों जी, उस वेल पर खिलते ही मुरझाया हुआ फ़ूल—वह रमा का नन्हा वालक शंकर—उस सुन्दर वालक का आगे क्या हुआ था! कौन जाने?

किन्तु एक दिन अकस्मात् ही सारे भार्गव ग्राम में एक खबर फैल गई। हरएक आश्चर्य से दंग होकर वह खबर दूसरे को बताने लगा। अन्त में पटेल ने वह खबर लाने वाले व्यक्ति को आदर के साथ बुला भेजा। उसका सन्मान कर उस समाचार की सत्यता के बारे में पूछ-ताछ की। तब वह नवागंतुक कहने लगा, "अजी, मैं आप लोगों के लिए बिलकुल ही अपरिचित नहीं हूँ। आप में से अनेकों ने श्री निनामी बाबा के मठ में उनकी सेवा के मधुर फल खाते हुए मुझे देखा होगा। मैं ब्राह्मण हूँ और मेरा नाम शुक्र है। संत-सेवा में ही जीवन व्यतीत करता हूँ। तीन वर्ष पूर्व इस ग्राम में पुर्तगालियों ने यहाँ के सज्जनों को जीवित जलाया था। उस हत्या-काण्ड में सन्त निनामी बाबा का जो घोर अन्त हुआ, वह सुनकर मेरे मन को अत्यन्त दुःख हुआ था। मन में आया कि उनकी मृत्यु के पूर्व जिस प्रकार उनकी आज्ञानुसार जीवन व्यतीत करता था, उसी प्रकार अब भी उन्हीं से पूछकर जीवन की आगे की दिशा भी निश्चित करनी चाहिए। ऐसा सोचकर मैंने उसी मंदिर में धरना दिया। उस निविड़ अरण्य के शिवालय में नौ दिन अनशन करने के बाद मुझे साक्षात्कार हुआ और आदेश मिला, 'जा, अन्तुनी के हाथ से रमा के पुत्र को छुड़ा कर ला, मुझ पर विश्वास करने से ही उसके पति की मृत्यु हुई। किन्तु उसके वंश की मैं अवश्य रक्षा करूँगा। इसलिए जा, तुरन्त जा और उस शंकर को छुड़ा कर ला।' प्रत्यक्ष निनामी बाबा की वह आज्ञा सुनकर मैं तत्काल उठा और चल पड़ा। आगे मैं गोवा किस प्रकार पहुँचा, अंतुनी को कैसे पता नहीं चला, वही बालक मुझे कैसे दिखाई दिया, लेकिन मैं किसी को कैसे नहीं दिखा और उस दुष्ट के ठीक घर में पहुँचकर उस बालक को मैं कैसे निकाल लाया आदि वृत्तांत मैं विस्तार से नहीं कहूँगा, क्योंकि वह आत्म-प्रशंसा है और विनय के विपरीत होगा। किन्तु यह अवश्य कहूँगा कि अतिमानवीय कार्य मेरे हाथ से हुआ, वह अद्भुत संत-शक्ति का ही चमत्कार है। अन्यथा मेरे समान तुच्छ व्यक्ति से यह कैसे हो सकता था? उस बालक की माँ—वह साध्वी रमा पहले ही परलोक सिधार चुकी थी। इसलिए उस बालक को लेकर मैं चला ही था कि—इतने में, मुँह का शिकार खींचकर ले जाने वाले पर

बाघ जैसे टूट पड़ता है, उसी प्रकार वह क्रूरकर्मा अन्तुनी मुझ पर अकस्मात् ही लपका, झपटा। सारे शस्त्रास्त्रों का प्रहार उन शत्रु-सैनिकों ने मुझ पर किया। किन्तु मुझ, अकेले ब्राह्मण ने केवल मंत्र-बल से पहाड़ की तरह उन प्रहारों को झेलकर निष्फल कर दिया। किन्तु नवजात बछड़े से भी कोमल वह बालक बेचारा धूप से, प्यास से और भूख से अति व्याकुल और विह्वल होता था, तब मेरा कोई बस नहीं चलता था। उस परिस्थिति से भी तीन दिन तक मैं लड़ता रहा, किन्तु व्यर्थ। और अन्त में भयभीत होकर परमेश्वर की आराधना करने लगा, "आओ परमात्मा ! तुम्हीं अब सहायता के लिए दौड़कर आओ।' और क्या कहूँ ! मेरी अब अनुनय-विनय सुनकर प्रत्यक्ष वे संत-शिरोमणि श्री निनामी बाबा ही दिव्य विमान से अवतरित हुए। उन्होंने उस बालक को हाथ में लिया और दिव्य शब्दों में मेरा गौरव करते हुए बोले, 'जाओ, हम ही अब इस वंश का स्वर्ग में स्वयं पोषण करेंगे। इसे वही पुण्य-गति योग्य है। किन्तु बेटा ! इस वंश की एक भौतिक इच्छा बाकी है। वह तुझे ही पूर्ण करनी पड़ेगी। जा, जा, इनके ग्राम में इस कुल की जो पवित्र भूमि है वहाँ उनके कुल-देवता की स्थापना कर, तू ही उसकी नित्य पूजा किया कर। उसमें तेरी मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा भी पूर्ण होगी और इस पुण्य-कुल की स्मृति भी संसार में जीवित रहेगी।' वह सन्त-वाक्य शिरोधार्य कर मैंने कहा, 'महाराज, जो आज्ञा। किन्तु इस पवित्र कुल का देवता कौन-सा है, वह मुझे ज्ञात नहीं है।'

"इस पर वह संतराज बोला, 'जा, उस घर के आंगन के बीचोंबीच तुलसी के पौधे के पास श्री रामचन्द्र जी की कोदंडधारी मूर्ति मिलेगी वही उस पवित्र कुल का कुल-देवता है। उसकी प्रतिष्ठापना कर नित्य पूजा-अर्चना करो। तेरी और मेरी इस दिव्य भेंट की, वह श्रीराम की मूर्ति ही सब लोगों के लिए गवाह रहेगी। इसलिए अब जा।' ऐसा कहकर तथा उस बालक को साथ लेकर वे श्री निनामी बाबा देखते-देखते अदृश्य हो गए। सज्जनो ! सन्त तुकाराम महाराज का सदेह स्वर्गारोहण तो आपने केवल सुना ही है। किन्तु सदेह बालक को साथ लेकर श्री सन्त निनामी बाबा का वह दिव्य स्वर्गारोहण मैंने प्रत्यक्ष

किन्तु एक दिन अकस्मात् ही सारे भार्गव ग्राम में एक खबर फैल गई। हरएक आश्चर्य से दंग होकर वह खबर दूसरे को बताने लगा। अन्त में पटेल ने वह खबर लाने वाले व्यक्ति को आदर के साथ बुला भेजा। उसका सन्मान कर उस समाचार की सत्यता के बारे में पूछ-ताछ की। तब वह नवागंतुक कहने लगा, "अजी, मैं आप लोगों के लिए बिलकुल ही अपरिचित नहीं हूँ। आप में से अनेकों ने श्री निनामी बाबा के मठ में उनकी सेवा के मधुर फल खाते हुए मुझे देखा होगा। मैं ब्राह्मण हूँ और मेरा नाम शुक्र है। संत-सेवा में ही जीवन व्यतीत करता हूँ। तीन वर्ष पूर्व इस ग्राम में पुर्तगालियों ने यहाँ के सज्जनों को जीवित जलाया था। उस हत्या-काण्ड में सन्त निनामी बाबा का जो घोर अन्त हुआ, वह सुनकर मेरे मन को अत्यन्त दुःख हुआ था। मन में आया कि उनकी मृत्यु के पूर्व जिस प्रकार उनकी आज्ञानुसार जीवन व्यतीत करता था, उसी प्रकार अब भी उन्हीं से पूछकर जीवन की आगे की दिशा भी निश्चित करनी चाहिए। ऐसा सोचकर मैंने उसी मंदिर में धरना दिया। उस निविड़ अरण्य के शिवालय में नौ दिन अनशन करने के बाद मुझे साक्षात्कार हुआ और आदेश मिला, 'जा, अन्तुनी के हाथ से रमा के पुत्र को छुड़ा कर ला, मुझ पर विश्वास करने से ही उसके पति की मृत्यु हुई। किन्तु उसके वंश की मैं अवश्य रक्षा करूँगा। इसलिए जा, तुरन्त जा और उस शंकर को छुड़ा कर ला।' प्रत्यक्ष निनामी बाबा की वह आज्ञा सुनकर मैं तत्काल उठा और चल पड़ा। आगे मैं गोवा किस प्रकार पहुँचा, अंतुनी को कैसे पता नहीं चला, वही बालक मुझे कैसे दिखाई दिया, लेकिन मैं किसी को कैसे नहीं दिखा और उस दुष्ट के ठीक घर में पहुँचकर उस बालक को मैं कैसे निकाल लाया आदि वृत्तांत मैं विस्तार से नहीं कहूँगा, क्योंकि वह आत्म-प्रशंसा है और विनय के विपरीत होगा। किन्तु यह अवश्य कहूँगा कि अतिमानवीय कार्य मेरे हाथ से हुआ, वह अद्भुत संत-शक्ति का ही चमत्कार है। अन्यथा मेरे समान तुच्छ व्यक्ति से यह कैसे हो सकता था? उस बालक की माँ—वह साध्वी रमा पहले ही परलोक सिधार चुकी थी। इसलिए उस बालक को लेकर मैं चला ही था कि—इतने में, मुँह का शिकार खींचकर ले जाने वाले पर

बाघ जैसे टूट पड़ता है, उसी प्रकार वह क्रूरकर्मा अन्तुनी मुझ पर अकस्मात् ही लपका, झपटा। सारे शस्त्रास्त्रों का प्रहार उन शत्रु-सैनिकों ने मुझ पर किया। किन्तु मुझ, अकेले ब्राह्मण ने केवल मंत्र-बल से पहाड़ की तरह उन प्रहारों को झेलकर निष्फल कर दिया। किन्तु नवजात बछड़े से भी कोमल वह बालक बेचारा धूप से, प्यास से और भूख से अति व्याकुल और विह्वल होता था, तब मेरा कोई बस नहीं चलता था। उस परिस्थिति से भी तीन दिन तक मैं लड़ता रहा, किन्तु व्यर्थ। और अन्त में भयभीत होकर परमेश्वर की आराधना करने लगा, "आओ परमात्मा! तुम्हीं अब सहायता के लिए दौड़कर आओ।' और क्या कहूँ! मेरी अब अनुनय-विनय सुनकर प्रत्यक्ष वे संत-शिरोमणि श्री निनामी बाबा ही दिव्य विमान से अवतरित हुए। उन्होंने उस बालक को हाथ में लिया और दिव्य शब्दों में मेरा गौरव करते हुए बोले, 'जाओ, हम ही अब इस वंश का स्वर्ग में स्वयं पोषण करेंगे। इसे वही पुण्य-गति योग्य है। किन्तु बेटा! इस वंश की एक भौतिक इच्छा बाकी है। वह तुझे ही पूर्ण करनी पड़ेगी। जा, जा, इनके ग्राम में इस कुल की जो पवित्र भूमि है वहाँ उनके कुल-देवता की स्थापना कर, तू ही उसकी नित्य पूजा किया कर। उसमें तेरी मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा भी पूर्ण होगी और इस पुण्य-कुल की स्मृति भी संसार में जीवित रहेगी।' वह सन्त-वाक्य शिरोधार्य कर मैंने कहा, 'महाराज, जो आज्ञा। किन्तु इस पवित्र कुल का देवता कौन-सा है, वह मुझे ज्ञात नहीं है।'

"इस पर वह संतराज बोला, 'जा, उस घर के आंगन के बीचोंबीच तुलसी के पौधे के पास श्री रामचन्द्र जी की कोदंडधारी मूर्ति मिलेगी वही उस पवित्र कुल का कुल-देवता है। उसकी प्रतिष्ठापना कर नित्य पूजा-अर्चना करो। तेरी और मेरी इस दिव्य भेंट की, वह श्रीराम की मूर्ति ही सब लोगों के लिए गवाह रहेगी। इसलिए अब जा।' ऐसा कहकर तथा उस बालक को साथ लेकर वे श्री निनामी बाबा देखते-देखते अदृश्य हो गए। सज्जनो! सन्त तुकाराम महाराज का सदेह स्वर्गारोहण तो आपने केवल सुना ही है। किन्तु सदेह बालक को साथ लेकर श्री सन्त निनामी बाबा का वह दिव्य स्वर्गारोहण मैंने प्रत्यक्ष

देखा है।" यह कहते हुए मानो वह दिव्य-दृश्य फिर एक बार आँखों के सामने दिखाई दे रहा हो, इस प्रकार आँखें चुंधिया कर उसने बंद कर लीं। सारे शरीर में रोमांच हो आया। और वह ब्राह्मण एकाएक शांत और मौन हो गया।

उसकी वह अर्द्ध-समाधि की अवस्था देखकर वहाँ सब उपस्थितों को उसके प्रति परम आदर उत्पन्न हुआ। और उसकी बताई हुई कहानी के सम्बन्ध में मन में उत्पन्न होने वाली शंकाएँ मन में दबकर रह गईं।

: २ :

किंचित् काल तक थोड़ी चर्चा होकर वह मूर्ति माधव के उजड़े हुए घर के अन्दर वास्तव में है या नहीं, यह प्रत्यक्ष देखना सबकी राय से तय हुआ। उपस्थित एक-दो व्यक्तियों ने बताया कि वे मूर्तियाँ कई दिन तक माधव के घर में ही पड़ी हुई थीं।

तब वह शुक्र नामक ब्राह्मण अति उत्सुकता से ताली बजाकर बोला, "अजी, वे मूर्तियाँ वहाँ पर अवश्य होंगी, श्री निनामी बाबा की वह दिव्य वाणी क्या कभी असत्य होगी ? नहीं, त्रिकाल में भी यह सम्भव नहीं। ग्राम के पंचों को लेकर ही हम दर्शन को चलें, ताकि आगे चलकर कोई यह न कह सके कि ये बनावटी मूर्तियाँ लाकर यहाँ स्थापित की गई हैं।"

गवाही के लिए पंचों को साथ लेकर लोग माधव के उस उजड़े हुए घर की ओर गए। उन्होंने वहाँ क्या देखा ? तुलसी के पौधे के निकट ही कोदण्डधारी राममूर्ति खड़ी थी। देखते ही लोगों ने सारा आकाश जय-जयकारों से गुंजा दिया।

बस, उस दिन से वह दिव्य-कथा उस ग्राम के माहात्म्य में इस प्रकार मिल गई कि भार्गव ग्राम को तीर्थक्षेत्र-जैसा महत्व प्राप्त हुआ तथा वह शुक्र ब्राह्मण श्रेष्ठ सन्त की तरह सबके लिए पूज्य बन गया। सब लोगों ने एक राय से उस वंश की इच्छा को मानकर माधव के उस घर को पवित्र देवालय तथा उसकी भूमि को देव-घर समझ लिया। उसकी सारी व्यवस्था भी शुक्र को सौंप दी गई। हुतात्मा वीरवरों की नई बनी हुई भव्य समाधि पर प्रति वर्ष जो मेला लगने लगा था, उस

मेले में जो शुक्र विनयवश कथा कहने में संकोच करता था, अब वही ऐसे विस्तार से तथा आकर्षक ढंग से कहने लगा कि वह अठारह पुराणों की कथाओं से भी अधिक अद्‌भुत प्रतीत हो। शीघ्र ही उसकी वह कथा राष्ट्र के सन्त-साहित्य में एक अति पावन मान-विन्दु वन गई।

आज इस भार्गव ग्राम में शहीदों की वार्षिक पुण्यतिथि निमित्त मेले में इधर-उधर चहल-पहल थी। इतनी भीड़ इस मेले में पहले कभी देखने में नहीं आई थी। इस वर्ष विशेष भीड़ होने का एक महत्वपूर्ण कारण भी था। एक महत्वपूर्ण समाज-कार्य के लिए इस वर्ष यात्रा में कई-एक अधिकारी तथा श्रेष्ठ पुरुष आने वाले थे।

कौन-सा था वह नया समाज-कार्य? पूर्व-काल में लोग जब दासता में पिस रहे थे, म्लेच्छों से जबरदस्ती से हीन-दीन हिन्दुओं को अपने धर्म से भ्रष्ट होना पड़ा था। उन अपने बन्धुओं को धार्मिक संस्कारों से शुद्ध करते हुए फिर से हिन्दू बनाकर अपने पितृ-गृह में सम्मान के साथ लौटाना, यही था वह कार्य। इसी कार्य के लिए आज उस मेले में अभूतपूर्व लोक-समुदाय इकट्ठा हो गया था। स्वयं छत्रपति ने भी उस अपूर्व कार्य के लिए अपनी अनुमति देकर अभिनन्दन करने के लिए शिष्टमण्डल भी भेजा था। उसी प्रकार बड़े-बड़े पण्डितों ने भी उस कार्य के लिये अपनी अनुकूलता दिखाते हुए अपने शिष्यों को इसे सम्पन्न कराने के लिये भेजा था। उसी प्रकार कितने विद्वान् स्वयं भी उपस्थित हो गये थे। कोंकण के शासकीय अधिकारी देशमुख अपने सैनिकों समेत आ पहुँचे थे। स्थान-स्थान पर तम्बू-डेरे पड़े हुए थे और उनमें घोरपड़े, सावंत आंगरे आदि शूरवीर तथा श्रेष्ठ सरदार मण्डली ठहरी हुई थी। महाराष्ट्र के उस वैभव—श्रेष्ठ पुरुषों को—कभी पालकियों में, तो कभी हाथी पर हौदों में शान के साथ बैठकर जाते हुए देखकर लोगों के हृदय भक्ति से तथा आनन्द से फूल जाते थे। नगाड़े-सींघ-घण्टे आदि असंख्य वाद्यों की तुमुल ध्वनि से सारा आकाश गूँज उठा था।

नए-नए दृश्यों से सारा मेला शोभायमान हो रहा था। हलवाइयों ने पेंड़े तथा जलेबियों के पात्रों की बड़ी आकर्षक रचना की हुई थी। फल वालों ने अपने ताज़े तथा रसदार फलों की कैसी सुन्दर सजावट

की थी। तमाशे वाले भी भीड़ को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे, तो कहीं भिन्न-भिन्न खेल तथा झूले अपने गगनचुम्बी झोंकों से बाल-गोपालों का तथा बड़ों का भी मनोरंजन कर रहे थे। सचमुच इतना बड़ा मेला तो पहले कभी नहीं देखा गया था। हुतात्मा वीरों की उस भव्य समाधि के पास तिल धरने को भी जगह नहीं थी। समाधि-स्थान पर नाच, संकीर्तन तथा भजनों का रंग जमा हुआ था। उपासना का अखण्ड पाठ चल रहा था।

सैकड़ों लोग अपनी-अपनी कामनाएँ लेकर समाधि के सामने मनौती कर रहे थे और दूसरे कुछ लोग मनौतियाँ पूर्ण होने पर अपने संकल्प पूरे कर रहे थे। हजारों भावुक लोग उस द्विज श्रेष्ठ शुक्र के मुंह से रमापुत्र शंकर के सन्त निनामी बाबा के साथ सदेह स्वर्गारोहण की दिव्य-कथा अत्यन्त श्रद्धा के साथ सुन रहे थे, तथा उस आचार्य शुक्र के चरणों पर पुनः-पुनः नतमस्तक होकर उसे दक्षिणा समर्पण कर रहे थे। हुतात्मा संत श्री निनामी बाबा की पवित्र पादुकाओं का दर्शन करने के लिए लोगों की प्रचण्ड भीड़ उमड़ पड़ी थी।

मन्दिर का वही स्थान था जहाँ पुर्तगाली सिपाहियों की चौकी थी, जो शहीदों का दहन-स्थल था, जिसका दर्शन वैसे असहनीय वेदना-दायक होता, किन्तु आज उस दहन-स्थान का एक विशाल समाधि-मण्डप में रूपान्तर होने के कारण असंख्य लोगों के लिए वह पवित्र-स्थान बन गया था। देखिए, काल की महिमा कितनी विचित्र है। कुछ ही वर्ष पूर्व लोग इसी चौक से अपनी जान बचाने के लिए दूर भागते थे और भागते-भागते मारे भी जाते थे। किन्तु आज समय बदल गया है और उसी चौकी के लिए इर्द-गिर्द उस पावन दहन-स्थल का निकट से दर्शन प्राप्त करने के लिए हज़ारों-लाखों लोग धक्कापेल कर रहे हैं। कभी-कभी इस तरह से भी समय पलटा खाता है।

मेले में दिन-भर कथा-कीर्तन, नमन-दर्शन, क्रय-विक्रय, अन्न-तर्पण आदि कार्य-क्रम चलते रहे। और अन्त में वह समय आया जिसके लिए विशेष रूप से यह समारोह आयोजित किया गया था। चबूतरे के सामने विस्तीर्ण मैदान में लोग जमा होने लगे। सब लोगों में बड़ा उत्साह था। बीचोंबीच विशाल दरी बिछाई गई थी। बड़े-बड़े लोगों

को पटेल स्वयं दरी पर ले जाकर वैठा रहे थे। कोंकण की हिन्दू जनता के अगुआ आज उस सभा में प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हो रहे थे। धर्मान्तरित बन्धुओं का यह शुद्धि-समारोह देखने के लिए अन्य भी अनेकों प्रमुख पुरुष पूरे महाराष्ट्र से आये हुए थे।

(शृंग) सींग वज रहे थे, तूतियों की ललकार हो रही थी। सैनिक-रण-वाद्यों पर गीत वजाए जा रहे थे। हर्ष के वातावरण में बन्दूकें छोड़ी जा रही थीं। जल-सेना के तथा थल-सेना के शूरवीर सिपाही शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो वड़े ठाट से खड़े थे। वड़े-वड़े शास्त्री, वैद्य, योगी, व्यापारी, पण्डित, संन्यासी आदि भी अपने-अपने स्थान पर विराजमान थे। एक के पीछे एक पालकी आ रही थी और एक के वाद एक सरदार हाजिर हो रहे थे। पर-धर्म में ले जाये गए अपने धर्म-वन्धुओं का वह भव्य शुद्धि-समारोह अपनी आंखों देखने की प्रत्येक की ही प्रवल इच्छा दिखाई दे रही थी।

थोड़ी ही देर में उस प्रदेश के प्रमुख सूवेदार उस समारोह-स्थान में आ पहुंचे। उनके आते ही सारी सभा आदर व्यक्त करने के लिए उठकर खड़ी हो गई तथा सूवेदार के आसन ग्रहण करते ही सव लोग वैठ गए। अव सव प्रकार की गड़वड़ शान्त हो गई। सभा में चारों ओर स्तब्धता छा गई। और प्रत्येक व्यक्ति सावधान हो आगे की कार्यवाही के लिए उत्सुक हो उठा।

सूवेदार अपनी अधिकारपूर्ण गंभीर किन्तु मृदु आवाज़ में उपस्थित सभी स्वजाति वन्धुओं का स्वागत करते हुए वोले—"उपस्थित राज-कार्य धुरन्धर वीरो! स्थल और जल-सैनिको के श्रेष्ठ विद्वानो, सेठो, नागरिको तथा ग्रामीण आवाल-वृद्ध वन्धुओ! आज अपने इस परशुराम-क्षेत्र के लिए वड़े आनन्द का दिन है। एक दिन था जवकि इसी वट-वृक्ष के इसी चवूतरे पर अन्तुनी का वह पाशवी हिंस्र-स्वर सुनते ही दुर्वल हिन्दुओं के प्राण निकल जाते थे। हमारी औरतों को, वच्चों को, हमारे सामने ही म्लेच्छ भ्रष्ट कर ले जाते थे, परन्तु फिर भी उनको रोकने का साहस करने वाला एक भी नहीं निकलता था। उसी चवूतरे पर आज हम अपने पूर्ण स्वाभिमान के साथ खड़े हैं। ये हमारे तीक्ष्ण शस्त्र सुसज्जित हैं और यह हमारा भगवा ध्वज शान से फहरा रहा

है। आज इस कोंकण में हिन्दुओं से वैर करने वाला गोरा या काला क्या, कोई माँ का लाल है जो हमारी ओर टेढ़ी नज़र से देख सके।

"बन्धुओ! इस बात को लगभग बीस साल हो चुके। इसी भार्गव ग्राम में हिन्दू होने के कारण पुर्तगीजों ने लोगों को नृशंस नर-चिता पर जला दिया था। उनके लिए तो मानो वह एक खेल ही था। इस ढंग से उन्होंने सैकड़ों गाँवों में दूसरों के धर्म को नष्ट करने का निर्लज्ज चक्र चलाया था, किन्तु इस भार्गव ग्राम में उस दिन वह अग्नि-काण्ड भड़काने में उनके हाथ जिस तरह से जले थे, वैसे पहले कभी भी नहीं जले थे, वैसे पहले कभी भी नहीं जले होंगे।

"बीस साल पूर्व उस दिन नर-चिता की धर्मवेदी पर शहीद हुए वीरों की भस्मी की दुहाई देकर इस छोटे-से ग्राम के लोगों ने दासता से विमोचन की जो प्रतिज्ञा की थी, उस प्रतिज्ञा से ही एक-एक ग्राम, नगर गूँज कर भड़क उठा था। उस प्रतिज्ञा ने ही बाद में एक भयंकर रण-गर्जना का रूप धारण कर लिया था। हम हिन्दुओं की सहनशीलता के आधार पर ही उनका धर्म-परिवर्तन का स्तम्भ खड़ा था। वे हब्शी, अंग्रेज़, पुर्तगाली उनके वे आसुरी सिंहासन उस सहनशीलता के स्तम्भ पर ही आरूढ़ थे। जैसे हिन्दू-धर्मी जनता ने इन धर्मद्वेषी अत्याचारियों को ललकारा तो उसी क्षण भयंकर असह्य गड़गड़ाहट के साथ वह महल गिर पड़ा और नरसिंह के समान वह वीर चिम्मा जी उन असुरों पर टूट पड़ा। भय से वह नर-राक्षस-दल काँप उठा। बस, नरसिंह जी ने तो उनका विनाश ही कर डाला। एक हाथ से उसने राक्षसराज रावण के समान बल वाले हब्शियों को समाप्त किया, तो दूसरे हाथ से उसने इन राक्षसों के धर्मोन्माद को साफ कर दिया। इन राक्षसों को शान्ति और अहिंसा का उपदेश देने के लिए सैकड़ों उपदेशक भी गए थे, किन्तु उनका क्या परिणाम हुआ? उन हिंस्र पशुओं के लिए वे बलि के बकरे मात्र बने। किन्तु आज वे हब्शी बाघ और वे पुर्तगाली लोमड़ियाँ एकाएक मासूम बनकर हिंसा करना ही मानो भूल गए हैं। क्यों? क्या वे आज हिंसा करना नहीं चाहते? नहीं, आज वे हिंसा कर ही नहीं सकते। आज हिन्दू-धर्म के तीक्ष्ण खड्ग ने उनके हिंस्र दाँत और नाखून जड़-मूल से काट कर इतने साफ किए हैं, वे बेचारे मानो गाय बने हैं।

जिस कोंकण में हरि का नामोच्चारण भी दण्डनीय हो गया था, उसी कोंकण में आज सह्याद्रि से समुद्र तक हरिभक्तों के मेले, हरि नाम का जप करते हुए आकाश को गुंजा रहे हैं। आज कोंकण में हिन्दुओं के श्रद्धा-स्थान, गाय, हिन्दू-स्वातन्त्र्य, हिन्दू-धर्म, हिन्दू-ध्वज, यश यही सव प्रवल सर्वश्रेष्ठ वन गये हैं। अहिन्दुओं की दुष्ट-शक्ति नष्ट हो गई है। आज हर मन्दिर में निर्विघ्न रूप से देवतार्चन चालू है, इसका अर्थ यह नहीं कि अहिन्दुओं का धर्म अव खतरे में है। जो-जो अहिन्दू हैं, सुख से चर्च में अथवा मस्जिद में अपनी-अपनी पद्धति के अनुसार अर्चना कर रहे हैं। पर धर्म-सहिष्णुता, निरूपद्रविता तथा सवको अपनाने की भावना यह तो हम हिन्दुओं का मृदुल स्वभाव ही है, अर्थात् आज इस कोंकण में मानो स्वर्ग-सुख ही अवतरित हुआ है। वन्धुओ! रात्रि के घनघोर अंधकार से व्याप्त आकाश को फाड़ कर आज का यह स्वर्णिम दिवस इस कोंकण भूमि पर लाने के लिए जिन्होंने अपने प्राण अर्पण किए, उनका इस आनन्द के अवसर पर स्मरण होना स्वाभाविक ही है। सचमुच वे शहीद धन्य हैं! उनका भाग्य भी अतुलनीय है। सचमुच आज के इस सौभाग्यशाली दिन के पीछे कितना वड़ा इतिहास है, वे महान् तपस्वी श्री ब्रह्मेन्द्र स्वामी और हिन्दुओं की अभिमानी देवी-स्वरूपा वह मदुरा देवी! उनके कृपा प्रसाद के विना क्या आज का यह भाग्य-दिवस उदित होता? वे हमारे वीर जल-सेनानी सरखोजी तथा मानाजी आँगरे—नहीं-नहीं, आँगरों का पूरा घराना, और धारं-करी भोड़, मोहिते, शिन्दे तथा रणशूर पिलाजी! वह चिपलून में दुश्मन को साफ करने वाला वांका लड़ाका वीर वांकाजी! वह निडर खण्डोजी और वह रणधीर खराड़े! वे हिन्दुओं के अभिमानी अन्ताजी तथा रामचन्द्र काँवड़े! वह गंगाजी नाइक पटवर्धन, वह डाहलू क्षेत्र को शत्रु से छीन लेने वाला राणोजी! तारापुर के हमले में शत्रु को पीछे हटाते-हटाते शत्रु का मुकावला करते हुए रण-मैदान में अपनी देह छोड़ने वाला रेटरेकर! उसका शरीर गिरा, किन्तु उसका ध्वज तो अन्त में तारापुर के किले पर चढ़ ही गया। महिम, गिरगिम, धारावी, वासावे आदि पर कब्ज़ा करते हुए हमारी पराक्रमी मराठी सेनाएँ वसई पर जाकर भिड़ गई। वह वसई! जिसके नामोच्चार से हमारी सेना

का अतुल पराक्रम आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। वे विजयी वीर मानो सामने खड़े दिखाई देते हैं और उन सबका नेता वीराग्रणी वीर चिम्मा जी तो मानो प्रत्यक्ष सामने आ जाता है।

"ऐसे अगणित नाम मुझे याद आ रहे हैं। वास्तव में प्रशंसा किस-किस की की जाये। सैनिकों की अथवा हमारे सेनापतियों की! बन्धुओ! हमारे इस पुण्य परशुराम-क्षेत्र को पुनरपि दैत्य-मुक्त करने के लिए जिन सहस्रों योजकों ने, बहादुरों ने, धर्मवीरों ने और शहीदों ने इस धर्म-युद्ध में प्राणार्पण किया, वे सभी सचमुच धन्य हैं। आज अखिल महाराष्ट्र विशेषकर परशुराम-क्षेत्र में रहने वाले हम अत्यन्त नम्र भाव से उन सबके महान् उपकार स्मरण कर रहे हैं। उन्होंने ही वहाँ हम हिन्दुओं की प्रतिष्ठा कायम रखी। इसलिए आज यह सभा उन सबके चरणों पर अति कृतज्ञता से अति विनम्र भाव से तथा परम भक्ति से पुष्पांजलि अर्पित कर रही है।"

इस प्रकार सूबेदार का भाषण समाप्त होते ही श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए संकेत के अनुसार सारी सभा उठकर दो क्षण खड़ी हो गई। धर्मवीरों की पावन स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए शंख, सींग, रणभेरियाँ, नगाड़े आदि वाद्यों का प्रचंड घोष हुआ।

वह कृतज्ञतापूर्ण अश्रुसिंचित कुछ क्षण समाप्त होते ही वाद्य-ध्वनि शान्त हुई। श्रवणोत्सुक समाजन बैठ गए और सूबेदार की अलंकार-युक्त वाणी लोगों के हृदय को फिर से आकर्षित करने लगी। वे बोले, "बन्धुओ! इस धर्मयुद्ध में शहीद हुए वीरों का कृतज्ञता भाव से स्मरण कर हमने सर्वप्रथम अपना छोटा-सा कर्तव्य सम्पन्न किया है। किन्तु भाइयो! जो इस पुण्य कर्मसागर में मृत्यु को प्राप्त हुए, तथा जो शत्रु से लड़कर भी आज का यह सुदिन देखने के लिए भाग्यवश जीवित रहे, उनके उपकार भी क्या कम हैं! फिर आज उन महान् हुतात्माओं की पुण्यतिथि के दिन क्या उन सबका भी कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना कर्तव्य नहीं है, जो हिन्दू-स्वातन्त्र्य के इस रण में, इस कोंकण में लड़े और ईश-कृपा से जो आज भी उसी ध्वज की रक्षार्थ अन्य प्रदेशों में जाकर लड़ रहे हैं। उनका भी तो आज के इस पवित्र दिन पर हमें सत्कार करना चाहिए।

"वंधुओ ! उस दिन अन्तुनिया का विरोध करने के लिए सर्वप्रथम जो शत्रु पर टूट पड़ा, वह वीर इन ग्रामीणों में आज विद्यमान है। वह वीर कौन है यह तो आप सब जानते ही हैं। उसके बारे में आप लोगों के सम्मुख कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।"

उसी समय 'पटेल ! पटेल !!' ऐसा लोग चिल्लाए। ठीक, ठीक। सूबेदार आगे बोले—"पटेल ही वह वीर है। साथ ही इस गाँव को जिन शहीदों की पावन राख से माहात्म्य प्राप्त हुआ है, उन्हीं में से एक महान् शहीद जो शिक्षक थे, पटेल उन्हीं का पुत्र है। इन दोनों को आज उन जीवित वीरों के प्रतिनिधि समझकर यहाँ राष्ट्रीय सम्मान दिया जा रहा है।

"आइए पटेल, यहाँ सामने आइए और स्वयं पेशवा के भेजे हुए इस कृपाण को कमर में बाँधिए। 'इन हिन्दू-धर्म के शत्रुओं के लिए इस खड्ग की धार सदा तीक्ष्ण बनी रहे।' ऐसा कहकर सूबेदार ने पेशवा द्वारा भेजा हुआ वह खड्ग सम्मान के साथ पटेल को भेंट किया। फिर शिक्षक के पुत्र की ओर मुड़कर वह बोले, " 'आत्मा वै जायते पुत्रः' —इस वचन के अनुसार तुझ में आज हमें तेरे वीर पिता की मूर्ति प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है। अग्निहोत्री ब्राह्मणों में श्रेष्ठ उन वीर पिता (शिक्षकजी) ने—रणयज्ञ की अग्नि में केवल अपनी ही नहीं, तो हिन्दू-शत्रु अविन्धयों की शक्ति की भी आहुति दे दी, इसलिए तेरे शहीद पिता की चरण-स्मृति में और हे पण्डितवर ! तेरी पण्डिताई का पूजन करने के हेतु श्रीमन्त पेशवा ने यह एक छोटा-सा उपहार—तुलसी-पत्र रूप—सम्मानार्थ यह शाल तुझे समर्पित करने के लिए साथ भेजा है। लीजिए, हिन्दुत्व के मान का प्रतीक, इस नाते इस शाल को ओढ़िए।"

तत्काल सारी सभा ने उन दोनों का जय-जयकार करके उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया।

ऐसा रणशूर पटेल, किन्तु उत्तर देने के लिए दो शब्द बोलते समय कितने संकोच का अनुभव कर रहा था। उसने कहा, "बन्धुओ ! आज का यह सम्मान वास्तव में मेरा सम्मान नहीं। वह तो उन वीर श्रेष्ठों का है, जिन्होंने युवावस्था में मुझे देश-स्वातन्त्र्यार्थ रण-दीक्षा दी।

तारापुर की लड़ाई में जो वीराग्रणी देश के लिए लड़ते-लड़ते काम आया था।" इतना बोलकर पटेल ने अपने आँसू पोंछे। पितृ-स्मरण से पटेल की आँखों से पवित्र अश्रु बहने लगे। अश्रु-भरे नैनों से तथा गद्गद स्वर से वह इतना ही बोला, "यह सचमुच उन गुरुवर का ही सम्मान है, मेरा नहीं। उन्हीं के लिए मैं केवल इसको स्वीकार कर रहा हूँ।"

सूबेदार जी ने दोनों को ही इत्र, गुलाब और पान दिए और फिर अपना भाषण प्रारम्भ किया, "राष्ट्र के लिए काम करने वालों के उपकारों को जो राष्ट्र कभी नहीं भुलाता, उस राष्ट्र को घोर संकट में भी राष्ट्रार्थ सर्वस्व निछावर करने वालों की कमी नहीं पड़ती, इसलिए आज यह सभा शहीदों के उपकारों के लिए अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट कर अपना कर्तव्य अंशतः निभा रही है।

"किन्तु बन्धुओ! आज यह हिन्दुत्व और हिन्दू राज्य फला-फूला दिखाई दे रहा है, वह केवल स्वर्गवासी अथवा जीवित बहादुरों के रक्त-सिंचन का ही फल नहीं। इस हिन्दू-स्वातन्त्र्य-वृक्ष को जिन्होंने अपना सुनहरा जीवन मिट्टी में मिलाकर खाद के रूप में दिया, उन्हें हम कैसे भूल सकते हैं!

"जो सुन्दर देवियाँ, जो कोमल बालक, और जो निस्सहाय बन्धु, उस समय म्लेच्छों ने हमसे बलात् छीन लिए और जिनको धर्म-भ्रष्ट कर जीवित ही पाप-नरक में धकेल दिया, जो अपने सुजनों के लिए पराए हो गए और कसाई के पशुओं की तरह दूर-दूर के देशों के बाजारों में बेचे जा रहे हैं। कसाई की कृपा पर निर्भर रहने वाले उन हिन्दू बन्धुओं का दुःख हमें आज असह्य हो रहा है।

"भाइयो, आज हम पर-दास्य से मुक्त होकर पूर्वजों के अपमान का बदला चुकाकर अपने घर में प्रवेश प्राप्त नहीं कर पा रहे! म्लेच्छों के घर में बाध्य हो जिन्होंने धर्म-बाह्य आचरण किया, उन अपने बन्धुओं को पतित समझकर क्या तुम अपने पूर्वजों के घर में प्रवेश करने के लिए कठोर-हृदय होकर रोकोगे? उन प्यार में तड़पते अपने भाई-बहनों के लिए क्या हम अपने घर के द्वार नहीं खोलेंगे? हाय! हाय!! यह तो जाति-द्रोह है, धर्मपात है और इसे ही श्रेष्ठ धर्मतत्त्व

मानकर हम संसार में सिर ऊँचा करते हैं। अरे-रे, कैसा यह दुर्भाग्य! कैसा यह हमारे धर्म का कलंक?

"इसलिए बन्धुओ! इस जाति-कलंक की लज्जा मन में लेकर उस विधर्मी मगरमच्छ के निगले हुए अपने धर्म-बन्धुओं को युद्ध करके, छुड़ाकर या मुक्त कर उन्हें फिर से शुद्ध करके अपने पूर्वजों के घर में वापस लाइए। भाई भाइयों से मिलें—हिन्दू हिन्दुओं से—ऐसी मुझे आपसे अपेक्षा है। इतना ही नहीं, बल्कि यह शीघ्र होना चाहिए, ऐसी मेरी हार्दिक इच्छा है। सचमुच ही यह सभा अगर आज यह पुण्य-कार्य सम्पादन करे तो आज का यह पुण्यतिथि-समारोह सही मानों में पुण्य-तिथि सिद्ध होगा। बताइए विप्रवर! बताइए, धर्म-शास्त्र पारंगत ब्राह्मण मण्डली ने क्या निर्णय किया है। बताइए, शुद्धि-कार्य यह योग्य है या अयोग्य।"

: ३ :

भाषण समाप्त कर सूबेदार बैठ गए। उनकी प्रार्थना को आज्ञा समझकर श्रेष्ठ गुरुवर का पुत्र उठ खड़ा हुआ। क्षण-भर उसने चारों ओर दृष्टि घुमाई। मानो उस निरीक्षण द्वारा उसने सारी सभा के मानस का आकलन कर लिया हो। और फिर निर्मल जल-प्रवाह की तरह उसका शुद्ध तर्कयुक्त वाग्प्रवाह प्रस्फुटित होने लगा—"हे श्रीमान् राज्य-प्रमुख तथा उपस्थित सभाजनो, ज़बरदस्ती से म्लेच्छ-धर्म में गए पतितों का शुद्धिकरण कर उन्हें फिर से सुधर्म में लेने की धर्मशास्त्र की सम्मति है अथवा नहीं, इसका निर्णय करने के लिए श्रेष्ठ धर्मशास्त्र पण्डितों के साथ आपने मुझे भी आज्ञा दी थी। उसके अनुसार शास्त्र का युक्ति-संगत सांगोपांग विचार करते हुए जो सर्वसम्मत निर्णय हमने किया, वह द्विज-श्रेष्ठ मण्डली की आज्ञानुसार आज इस जाति-सभा के सम्मुख निवेदन कर रहा हूँ। हमारी जो चर्चा हुई उसको विस्तार से यहाँ बताना तो सम्भव नहीं, किन्तु उसके सारांश के प्रमुख बिन्दु मैं कहूँगा। इसलिए आप सब बन्धु उसकी ओर ध्यान दें, ऐसी आपसे मैं पहले ही प्रार्थना करता हूँ।

" 'धारणात् धर्मः' यह धर्म का प्रमुख लक्षण है। जो लोगों का उद्धार करता है, उन्हें अभ्युदय प्राप्त कराता है, वही धर्म है। धर्म का

यह स्वरूप निश्चित करते ही स्वाभाविक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि विशिष्ट देश-काल में जो समाज धारणा करेगा तथा जाति का अभ्युदय जिसके द्वारा होगा, वही उस काल का समाज-धर्म माना जाएगा। इसलिए धर्म का द्विविध रूप एक स्वस्थ-कालीन तथा दूसरा आपत्कालीन ऐसा सव स्मृतियों की सम्मति है। प्रत्येक काल में भिन्न अवस्था रहती है, भिन्न आवश्यकताएँ होती हैं, इसलिए एक कृत्य कभी मारक होता है तो कभी तारक। यहीं देखिए कि स्पृश्य-अस्पृश्य नीति शान्ति के समय में धर्मानुकूल वताई गई है। उसके सम्वन्ध में—

'महाभये, संग्रामे, यात्रायाम् देशविप्लवे।
ग्रामनगरदाहेवा स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते॥'

"अर्थात् महासंकट, संग्राम, यात्रा में, देश में विप्लव मचा हो, अथवा ग्राम व नगर को आग लगी हो तो स्पृश्य-अस्पृश्य नियमों का पालन नहीं करना चाहिए ऐसा शास्त्र कहते हैं। इसलिए धर्म का द्विविध-स्वरूप आँखों के सामने रखकर हमें एक ही प्रश्न विचारार्थ दिखाई देता है कि फिर समाज का हित किसमें है? शुद्धिकरण में अथवा वहिष्कार में। अगर यह शुद्धिकरण समाज-हितकारक तथा अभ्युदय प्रकट करने वाला हो, तव तो वह धर्म-विहित ही है।

"कोई भी विचारवान लोगों का जातीय संघ व समाज किसी-न-किसी जातीय ध्येय के सिद्धि के हेतु ही अपना संघटन खड़ा करते हैं। वह ध्येय-सिद्धि के अनुरूप नियम-उपनियम निर्माण करते हैं और फिर उस समाज के सव सदस्य उन नियमों का व्यक्तिशः पालन करते हैं।

"किन्तु मान लीजिए किसी एक व्यक्ति को वह जीवन-ध्येय अपूर्ण लगा अथवा अग्राह्य प्रतीत हुआ अथवा वह ध्येय प्राप्त करने की दृष्टि से उस समाज ने तैयार किये गए नियम उसके आचरण में लाने के योग्य नहीं समझे अथवा वह उससे सहमत नहीं है और परिणामस्वरूप यदि वह व्यक्ति अपने समाज से पृथक् होना चाहे तो उस परिस्थिति में दो ही पर्याय वाकी रहते हैं। एक मार्ग यह कि वल प्रयोग कर उस व्यक्ति को देह-दण्ड की संज्ञा देकर भी जाति-त्याग नहीं करने दिया जाए। दूसरा पर्याय ऐसा कि जिस व्यक्ति से अप्रीति हुई, उसे हम स्वयं समाज से अलग कर दें तथा उसे जाति-वाह्य समझकर उसे

आचरण की छूट दे दें।

"इन दो मार्गों में पहला आसुरी मार्ग है, दूसरा आर्य मार्ग। इस आर्य-पद्धति को ही लोग बहिष्कार के नाम से सम्बोधन करते हैं। 'यह आर्य-मार्ग ही कठिन प्रसंग में जाति के अथवा व्यक्ति के हित का होता है। यही वास्तव में धर्म-विहित मार्ग है। क्योंकि सत्य की खोज में व्यक्ति के आत्म-विकास के लिए तथा व्यष्टि और समष्टि के स्वत्व-रक्षा के हेतु, व्यक्ति को ज़बरदस्ती से जाति में ही रखने की अपेक्षा सम्बन्ध-विच्छेद करने की स्वतन्त्रता देकर बहिष्कृत समझना अधिक कल्याणकारी है।

"इस प्रकार सामाजिक धर्म के आधारभूत तत्व और बहिष्कार का सही अर्थ समझकर हम इस प्रश्न की ओर यदि देखें तो पतित परावर्तन अथवा शुद्धिकरण के योग्य अथवा अयोग्य होने का सवाल ही बाकी नहीं रहता। वह केवल वितण्डावाद-मात्र रह जाता है। क्योंकि पहली बात यह है कि जिन्हें दुष्ट.शत्रु-सैनिकों ने, विधर्मी दस्युओं ने बलात्कार से या दण्ड-प्रयोग से भगाया, उन्हें बहिष्कृत करने का किसी को अधिकार ही नहीं। जिन्होंने जाति-ध्येय को अथवा जाति-नियमों को स्वेच्छा से भंग नहीं किया। इतना ही नहीं तो स्वत: के धर्म का त्याग करने की इच्छा जिन्हें स्वप्न में भी नहीं हो सकती, उन्हें अपने धर्म-बन्धुओं के साथ रहने का परम्परागत अधिकार धर्मत: ही है। हिन्दू-धर्म का आचरण करने का उनका अधिकार उनसे कोई भी छीन नहीं सकता है, जैसे तुम्हारा अपना घर पूर्वार्जित सम्पत्ति है, वैसे ही यह उनका पूर्वार्जित घर है। इसलिए उनके लिए इस घर के द्वार बन्द करने वाले अथवा द्वार खोलकर उन्हें अन्दर लेने वाले तुम होते ही कौन हो? यह तो केवल अनधिकार-चेष्टा-मात्र है। राह चलने वालों का सर्वस्व लूट कर लुटेरों ने जिसे दूर घने जंगल में ले जाकर फेंक दिया, किन्तु वह भाग्यवश अपना घर ढूंढ़ता हुआ फिर से घर पहुंच जाए तो उसकी माता उसको प्रेम से आलिंगन देकर उसको प्यार से गोद में बैठाएगी या दूर धकेल देगी? मानवों में तो क्या, पशु और राक्षसों में भी ऐसी जननी नहीं मिलेगी कि जो इस परिस्थिति में अपने निष्पाप पुत्र को पतित मानकर दयाहीन नेत्रों से देखकर दूर

धकेल दे। किन्तु बन्धुओ ! तुम्हारे स्वरूप में उपस्थित यह जाति-माता ! जहाँ पाप का लवलेश भी नहीं, वहाँ घोर पतन का आरोप लगाकर, जिन्हें वहिष्कृत माना ही नहीं जा सकता, उन अपने पुत्रों को शास्त्र के आधार पर निष्ठुर नेत्रों से देखकर, हृदय का द्वार वन्द करके वैठी हुई है।

"हे जाति-रूपी माँ ! तू इधर अपने हृदय के द्वार वन्द कर वैठी है और उधर तेरे चिर-विरह से व्याकुल तेरे पुत्र झंझावात से छिन्न-भिन्न हुए वादलों की तरह, निष्ठुर दुर्भाग्य की आँधी में फँस कर लाचार वन दुनिया के वाज़ारों में वेचारे भटक रहे हैं। हाय ! वेचारों को भीख माँगने के लिए शत्रुओं के दरवाज़े के अलावा दूसरा कोई स्थान भी वाकी नहीं बचा है। इधर उन्हीं के भाई-वहनों ने उन्हें धिक्कारा है। उधर जो उनके भाई-वहन वनना चाहते हैं, वे उनके मन को विषैले सर्पों की तरह भयंकर प्रतीत होते हैं। कैसी वेचारों की दीन अवस्था है।

"और हमारे यह वन्धु पर-धर्म में जाते भी कैसे हैं ? रात में कुएँ में कोई यवन छिपकर थोड़ा माँस डाल देता है अथवा शराव की भट्ठी की एक वूँद डाल देता है या डवलरोटी का टुकड़ा डालता है और प्रातःकाल सूर्योदय होते ही गाँव की सैकड़ों महिलाएँ पानी भरने के लिए आती हैं और स्वच्छ घड़े और गागर भरकर सिर पर उठाकर घर ले जाती हैं, उससे स्नान होते हैं, देवताओं का पूजन होता है, उसी से भोजन पकाया जाता है, घर-घर में सभी लोग निःशंक मन से उस जल का उपयोग करते हैं। इतने में एकाएक चारों ओर से पुकार उठती है, 'अरे, अरे ! सारा पानी भ्रष्ट हो गया। जलाशय भ्रष्ट हो गया, उसमें डवल रोटी का टुकड़ा मिल गया।' इधर यह यवन आकर निर्भयतापूर्वक हँसकर लोगों से कहता है कि उसी का यह दुष्ट कृत्य है और जिसने वह जल अनजाने में अथवा जानकर पिया है वह मर्द, स्त्री, पुरुष, वच्चा सभी भ्रष्ट माने जाते हैं। ऐसे समय में किसने-किसने पानी पिया अथवा नहीं पिया, यह कैसे निश्चय हो अर्थात् सभी ने यह पानी पिया है, ऐसा माना जाता है। तुरन्त शास्त्रार्थ वताया जाता है, 'जनपद हिताय ग्रामंत्यजेत्' वस इसी तरह सारा गाँव पतित मानकर

बाह्य कर दिया जाता है। वे वेचारी सैंकड़ों हँसमुख कुमारिकाएँ और वे देवता-रूप सुहागिनें, उनके सबके वे प्रिय आप्तजन और वे वृद्ध बुजुर्ग आदि सब पूरा गाँव ही किंचित् अशुद्ध जल में देवतार्चन करते ही जाति-बाह्य-बहिष्कृत हो जाता है। सचमुच नाटक में भी जो बात लज्जास्पद प्रतीत हो, उसी अल्हड़ कृति को हम धर्मविधि समझते हैं। प्रायः सारे संसार में अन्यत्र कहीं भी किसी जाति का इतना बुद्धि-भ्रंश नहीं हुआ होगा।

" 'जनपदहिताय' कह कर हम अपने भाइयों को बहिष्कृत करते हैं, किन्तु बन्धुओ ! उससे होता है जनपद का भयंकर अहित। क्योंकि हिन्दुओ ! जिन बन्धुओं की तुम अवहेलना करते हो, उनका-तुम्हारा सम्बन्ध भाग्य से इतना घनिष्ठ है कि तुम उन्हें पतित कहकर जितना दुःख-सागर में गहरे डुबोओगे, उतना उन तथाकथित पतितों के भार से तुम भी दुःख-सागर में गहरे डूबते हो। तुम जिन्हें पतित समझते हो, उन निष्पाप बन्धुजनों को यह पीढ़ी तुम्हारे सहवास के लिए आतुर होकर तुम्हारे घर की ओर देखते-देखते जब मरेगी, तब तुम्हें तुम्हारा भीषण अकल्याण प्रत्यक्ष दिखाई देगा। क्योंकि प्रत्येक बहिष्कृत व्यक्ति की सन्तान यवन के घर में पलेगी, बढ़ेगी। उस यवन को ही अपने बाप-दादा, उनका धर्म ही अपना धर्म और उनके शत्रु ही अपने स्वजाति शत्रु ऐसी धारणा उन बालकों की बन जाएगी और इस प्रकार वह सन्तान स्वतः को अहिन्दू समझेगी तथा उनमें हिन्दुओं को समूल नष्ट करने की घोर शत्रु-भावना निर्माण होगी। जैसे-जैसे एक के बाद एक पीढ़ियाँ आएँगी वैसे-वैसे हिन्दुओ ! वे तुम्हारी जाति के अधिक-से-अधिक शत्रु बनते जाएँगे। बन्धुओ ! अपने पितृ-गृह में पुनः प्रवेश करने के लिए उत्सुक होते हुए भी अगर तुम अपने उन भाई-बहनों को पतित कहकर अहंकार से उन्हें दूर धकेलोगे तो अपने उस एक-एक भाई-बहन से शीघ्र ही दस-दस दुष्ट सन्तानें उत्पन्न होकर वे म्लेच्छों की जाति पुष्ट करते हुए हिन्दुओं का निश्चित ही रक्त शोषण करेंगी। ऐसा करना तो पुत्रों का बलि देकर शेर का पोषण करना नहीं तो क्या है ? जब कोई माँ इस प्रकार पुत्र की बलि देकर यदि शेर का पोषण करती है तो वह शेर रक्त पीकर पुष्ट होने पर उस माता को ही फाड़ कर

धकेल दे। किन्तु वन्धुओ ! तुम्हारे स्वरूप में उपस्थित यह जाति-माता ! जहाँ पाप का लवलेश भी नहीं, वहाँ घोर पतन का आरोप लगाकर, जिन्हें वहिष्कृत माना ही नहीं जा सकता, उन अपने पुत्रों को शास्त्र के आधार पर निष्ठुर नेत्रों से देखकर, हृदय का द्वार वन्द करके वैठी हुई है।

"हे जाति-रूपी माँ ! तू इधर अपने हृदय के द्वार वन्द कर वैठी है और उधर तेरे चिर-विरह से व्याकुल तेरे पुत्र झंझावात से छिन्न-भिन्न हुए वादलों की तरह, निष्ठुर दुर्भाग्य की आँधी में फँस कर लाचार वन दुनिया के वाज़ारों में वेचारे भटक रहे हैं। हाय ! वेचारों को भीख माँगने के लिए शत्रुओं के दरवाज़े के अलावा दूसरा कोई स्थान भी वाकी नहीं वचा है। इधर उन्हीं के भाई-वहनों ने उन्हें धिक्कारा है। उधर जो उनके भाई-वहन वनना चाहते हैं, वे उनके मन को विषैले सर्पों की तरह भयंकर प्रतीत होते हैं। कैसी वेचारों की दीन अवस्था है।

"और हमारे यह वन्धु पर-धर्म में जाते भी कैसे हैं ? रात में कुएँ में कोई यवन छिपकर थोड़ा माँस डाल देता है अथवा शराव की भट्ठी की एक वूंद डाल देता है या डवलरोटी का टुकड़ा डालता है और प्रातःकाल सूर्योदय होते ही गाँव की सैकड़ों महिलाएँ पानी भरने के लिए आती हैं और स्वच्छ घड़े और गागर भरकर सिर पर उठाकर घर ले जाती हैं, उससे स्नान होते हैं, देवताओं का पूजन होता है, उसी से भोजन पकाया जाता है, घर-घर में सभी लोग निःशंक मन से उस जल का उपयोग करते हैं। इतने में एकाएक चारों ओर से पुकार उठती है, 'अरे, अरे ! सारा पानी भ्रष्ट हो गया। जलाशय भ्रष्ट हो गया, उसमें डवल रोटी का टुकड़ा मिल गया।' इधर यह यवन आकर निर्भयतापूर्वक हँसकर लोगों से कहता है कि उसी का यह दुष्ट कृत्य है और जिसने वह जल अनजाने में अथवा जानकर पिया है वह मर्द, स्त्री, पुरुष, वच्चा सभी भ्रष्ट माने जाते हैं। ऐसे समय में किसने-किसने पानी पिया अथवा नहीं पिया, यह कैसे निश्चय हो अर्थात् सभी ने यह पानी पिया है, ऐसा माना जाता है। तुरन्त शास्त्रार्थ वताया जाता है, 'जनपद हिताय ग्रामंत्यजेत्' वस इसी तरह सारा गाँव पतित मानकर

वाह्य कर दिया जाता है । वे वेचारी सैंकड़ों हँसमुख कुमारिकाएँ और वे देवता-रूप सुहागिनें, उनके सवके वे प्रिय आप्तजन और वे वृद्ध वुजुर्ग आदि सव पूरा गाँव ही किंचित् अशुद्ध जल में देवतार्चन करते ही जाति-वाह्य-वहिष्कृत हो जाता है । सचमुच नाटक में भी जो वात लज्जास्पद प्रतीत हो, उसी अल्हड़ कृति को हम धर्मविधि समझते हैं। प्राय: सारे संसार में अन्यत्र कहीं भी किसी जाति का इतना वुद्धि-भ्रंश नहीं हुआ होगा ।

" 'जनपदहिताय' कह कर हम अपने भाइयों को वहिष्कृत करते हैं, किन्तु वन्धुओ ! उससे होता है जनपद का भयंकर अहित । क्योंकि हिन्दुओ ! जिन वन्धुओं की तुम अवहेलना करते हो, उनका-तुम्हारा सम्वन्ध भाग्य से इतना घनिष्ठ है कि तुम उन्हें पतित कहकर जितना दु:ख-सागर में गहरे डुवोओगे, उतना उन तथाकथित पतितों के भार से तुम भी दु:ख-सागर में गहरे डूवते हो । तुम जिन्हें पतित समझते हो, उन निष्पाप वन्धुजनों को यह पीढ़ी तुम्हारे सहवास के लिए आतुर होकर तुम्हारे घर की ओर देखते-देखते जव मरेगी, तव तुम्हें तुम्हारा भीषण अकल्याण प्रत्यक्ष दिखाई देगा । क्योंकि प्रत्येक वहिष्कृत व्यक्ति की सन्तान यवन के घर में पलेगी, वढ़ेगी । उस यवन को ही अपने वाप-दादा, उनका धर्म ही अपना धर्म और उनके शत्रु ही अपने स्वजाति शत्रु ऐसी धारणा उन वालकों की वन जाएगी और इस प्रकार वह सन्तान स्वत: को अहिन्दू समझेगी तथा उनमें हिन्दुओं को समूल नष्ट करने की घोर शत्रु-भावना निर्माण होगी । जैसे-जैसे एक के वाद एक पीढ़ियाँ आएँगी वैसे-वैसे हिन्दुओ ! वे तुम्हारी जाति के अधिक- से-अधिक शत्रु वनते जाएँगे । वन्धुओ ! अपने पितृ-गृह में पुन: प्रवेश करने के लिए उत्सुक होते हुए भी अगर तुम अपने उन भाई-वहनों को पतित कहकर अहंकार से उन्हें दूर धकेलोगे तो अपने उस एक-एक भाई-वहन से शीघ्र ही दस-दस दुष्ट सन्तानें उत्पन्न होकर वे म्लेच्छों की जाति पुष्ट करते हुए हिन्दुओं का निश्चित ही रक्त शोषण करेंगी । ऐसा करना तो पुत्रों का वलि देकर शेर का पोषण करना नहीं तो क्या है ? जव कोई माँ इस प्रकार पुत्र की वलि देकर यदि शेर का पोषण करती है तो वह शेर रक्त पीकर पुष्ट होने पर उस माता को ही फाड़ कर

खाएगा और उस वुद्धि-शून्य माँ को देह-दण्ड दिया जाय तो वह उचित ही है, ऐसा कोई भी कहेगा।

"भाइयो ! इस दुनिया में तीन जातियाँ ऐसी हैं, जो किसी व्यक्ति के एक वार वहिष्कृत होने पर उसे हमेशा के लिए वहिष्कृत हुआ समझती हैं। वे हैं हिन्दू, यहूदी और पारसी। और विशेपकर इन तीनों से ही माँस की वोटियाँ काट-काटकर इस्लाम पुष्ट हो सका है। किन्तु जहाँ ईसाई-पंथ से उसका पाला पड़ा, वहाँ वह वढ़ नहीं सका। क्योंकि यद्यपि एकाध वार मुसलमानों का वल अधिक होने पर उन्होंने ईसाइयों को धर्म-भ्रष्ट किया हो तो भी फिर से ईसाइयों का वल वढ़ते ही उन्होंने अपने इस्लाम-धर्म में गये हुए भाइयों को ही नहीं तो मूल मुसलमानों को भी अपने वल से ईसाई-धर्म में खींच लिया है। देखिए, स्पेन, पुर्तगाल आदि देश प्राय: पूर्णांश में इस्लामी वन गए थे, किन्तु आज उन दोनों देशों में हाथ की उँगलियों पर गिनने लायक भी मुसलमान वचे नहीं हैं, ईसाइयों की विजय होते ही उन्होंने निश्चित किये हुए दिन लक्षावधि मुसलमानों को ईसाई-धर्म में प्रवेश कराया। जिन्होंने इन्कार किया कि वे या तो मारे गए या देश से निकाल दिये गए। शक्ति से ही शक्ति को जीता गया और हिन्दुओ ! क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता कि इस प्रकार की वलात्कार की स्पर्धा करने वाले इन दो दैत्यों की गदा आज एक साथ ही हम पर गिर रही है। भाइयो ! ऐसी दुष्ट आपत्ति में सत्ययुगकालीन शान्तिपाठ, निश्चय आत्मघाती है। नहीं, यह तो घोर कलियुग है और अत्यन्त हिंस्र, ऐसी आपत्ति हम पर आ पड़ी है। इसलिए कलियुग के अनुसार आपत्धर्म का पालन करके ही उस आपत्ति का प्रतिकार करना चाहिए।

"शत्रु वलात्कार से हमारे धर्म को भ्रष्ट करते हैं, किन्तु वलात्कार से हम वास्तव में पूर्णत: भ्रष्ट नहीं होते। वल्कि हमारे वहिष्कार-मात्र से वे वेचारे पूर्णत: भ्रष्ट हो जाते हैं, क्योंकि वलात्कार से उनकी देह केवल शत्रु के अधीन होती है, किन्तु जव हम उन्हें पतित समझकर वहिष्कृत करते हैं, तव अनायास ही उनके मन शत्रु की ओर आकर्षित हो जाते हैं। इसलिए वास्तव में प्रत्यक्ष शत्रु से भी अधिक हम स्वयं ही स्वत: के भयानक शत्रु हैं।

"वन्धुओ ! मुसलमान जव हमारे देश में आए, तव कितने थे और आज वे कितने हैं ? इस देश में जव वे आए, तव वह अति अल्पसंख्यक थे। जिन्हें वे पहली वार ज़वरदस्ती से भगा ले गए, उन्हें कहीं पाताल में नहीं भेजा गया, वे यहीं रह रहे थे। उनमें से सैकड़ों तो गुप्त रीति से हिन्दू-धर्म का आचरण कर रहे थे। इस अवसर का फायदा उठाकर उन्हें यदि तुम फिर से हिन्दू वना लेते, तव तो आज जो मुसलमान करोड़ों की संख्या में तलवार उठाकर तुम्हारी गर्दन काटने के लिए खड़े हैं, वे शायद कुछ लाख भी न होते। क्योंकि यह सर्वसाधारण नियम है कि वलात्कार आधार से ही टिकता है। शत्रु तो सैकड़ों वार क्षीण-वल हुआ था, फिर शत्रु क्षीण-वल हुआ देखकर पर-धर्म में गये हुए हिन्दू फिर से अपने हिन्दू-धर्म में भला क्यों नहीं लौट आए। क्या वे उस समय स्वेच्छा से ही शत्रु-शिविर में रहे ? नहीं, अगर वैसा होता तो उन्होंने गुप्त रूप से हिन्दू-धर्म का आचरण न किया होता। वे वापस हिन्दू-धर्म में नहीं आए, क्योंकि हे जाति जननी ! तूने वलात्कार से पीड़ित पहली पीढ़ी को अपने हठ के कारण वापस हिन्दू-धर्म में नहीं आने दिया था। वहिष्कार के शस्त्र को उठाकर वह होने नहीं दिया था।

"अरे वनियो ! किसी चोर ने तुम्हारे करोड़ों रुपये गुण्डागर्दी से लूट लिए। और जिस रुपये को उस चोर ने स्पर्श किया है वह रुपया भ्रष्ट हुआ है ऐसा मानकर यदि वह रुपया वापस मिलने पर भी न लोगे तथा इसे पुण्य समझोगे तव तो हाय हे वणिक ! मूर्ख श्रेष्ठ ! तेरा दिवाला पिट जायगा और तू अन्न के लिए मुहताज हो जाएगा। तुझे निश्चित ही आत्म-हत्या का पाप लगेगा। भाइयो ! अपना यह हिन्दू-समाज ऐसे ही मूर्ख वनिए के समान क्या आत्मघाती नहीं है ?

"प्रिय वन्धुओ ! आपने कभी ऐसा राजा देखा है जो अपनी सेना को आज्ञा दे कि शत्रुओं को रोज एक तीक्ष्ण शस्त्र प्रदान करते जाओ। अगर देखा न हो तो यहाँ आइए। यहाँ हिन्दुस्तान के आश्चर्य-भण्डार में यह आश्चर्य भी देखने को मिलेगा। देखिए, मलय देश के एक हिन्दू राजा ने शिष्ट समिति से हिन्दुओं की एक जाति को आज्ञा दी कि उनमें से प्रत्येक को अपना कम-से-कम एक पुत्र मुसलमानों को स्वेच्छा से

अर्पण करना चाहिए। किस कारण ? इसलिए कि उससे समुद्री-व्यापार की वृद्धि हो सके। कैसी विचित्र बात है कि हम हिन्दू एक ओर तो अपने धर्म-शास्त्र के अनुसार समुद्र-गमन को निषिद्ध मानते हैं, किन्तु जैसे वेश्या धनोपार्जन की लालसा में अपने शील को बेचती है, उसी प्रकार अपना यह धर्मशास्त्र अपने कन्या-पुत्रों को म्लेच्छों के हाथ बेचने में ज़रा भी लज्जा का अनुभव नहीं करता। कैसी है यह पठित—मूर्खता ? अरे ! इस अत्यन्त उत्कट और भयंकर अन्ध-बुद्धि का क़टु परिणाम इस संसार में हमको शीघ्र ही भोगना पड़ेगा इसमें सन्देह नहीं। सचमुच समाज में यह आन्तरिक भय निर्माण हुआ है उसके घोर परिणाम मुझे दिखाई दे रहे हैं। यह कहते हुए मेरा गला सूख रहा है तथा शरीर कंपित हो रहा है।

"अरे, हिन्दुओं के इस बीज में से ही हिन्दुओं के लिए अत्यन्त क्रूर शत्रु ऐसे पैदा होंगे। अपना गोत्र, जाति, माँ-बाप आदि कौन थे यह भूलकर वे दैत्यों के समान मोपले अथवा यह हिन्दुओं के ही वंशज आगे हिन्दुओं की, गर्दनें ही हिन्दू-धर्म का उच्छेद कर सारी मलय-भूमि पर अपनी इच्छा के अनुसार एक अखंड मस्जिद निर्माण करने के लिए गाय के रक्त से सारे मन्दिर भिगोए जाएँगे। और हिन्दू बालकों को बलात्कार से भ्रष्ट किया जायगा। वह भविष्यत् का भीषण चित्र आज मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

"इसलिए भाइयो ! यह बहिष्कार इस तरह शत्रुओं द्वारा किये हुए शस्त्र-बलात्कार से भी अधिक अपनी जाति के लिए विनाशकारी हो रहा है और आगे भी होकर रहेगा। यह बहिष्कार धर्म-लक्षणों के अनुसार हिन्दू-समाज का धर्म हो ही नहीं सकता। क्योंकि जो धारण करता है, वह है धर्म। जो मारता है, वह धर्म नहीं। इसलिए जिन्हें विवश होकर मन से नहीं, शरीर से पर-धर्म का सनुसरण करना पड़ा है, वे बहिष्कार योग्य नहीं हैं। वे हिन्दू-समाज के बाहर से भी नहीं हो सकते। जिनके ऊपर अभक्ष्य भक्षण को दोष शत्रुओं ने चालाकी से लगाया है, उन्हें आपत्कर्म के नाते नाम-मात्र का प्रायश्चित्त देना पर्याप्त है।

"एक डबलरोटी के टुकड़े मात्र से सादा जलाशय भ्रष्ट होता हो,

तब तो जलचरों के मलमूत्रों से सारे तीर्थ दूषित माने जाने चाहिएँ। तीर्थों के जलों में मरे हुए चूहे, मेंढकों से अधिक डबल रोटी के टुकड़े को दूषित नहीं माना जा सकता। बन्धुओ! गन्दगी से उठकर मक्खी भगवान के भोग पर बैठती है, फिर भी हम उस भोग को पवित्र मानते हैं, फिर हमें बलात्कारित दीन-बन्धुओं को पवित्र मानने में क्यों घृणा होती है। इसलिए ऐसे अल्प श्रेष्ठ के परिहार के लिए प्रचलित साधारण प्रायश्चित्त ही पर्याप्त है—'मृदुना वा दारुणेन कर्मणा आत्मानम् राष्ट्रविपद्युद्धरेदिति आपद्धर्मीया स्मृतिः खलु शास्त्रसम्मतिः'। और आज जो धर्मान्तरित हिन्दू बान्धव अपने पितृ-गृह में फिर से लौट आने के लिए उद्यत हैं, वे ज़बरदस्ती से शत्रुओं द्वारा भ्रष्ट किये गए होने के कारण उन्हें अल्प-प्रायश्चित्त से फिर से हिन्दू बना लिया जाना शास्त्र-युक्त ही है।

"किन्तु कुछ ऐसे भी धर्मान्तरित भाई हैं जो सचमुच ही शत्रु के धर्म को सत्य धर्म मानकर लोभ से, मूर्खता से अथवा अविचार से शत्रु के शिविर में दाखिल हुए हैं, उनका तो बहिष्कार करना ही योग्य है, किन्तु वह बहिष्कार भी तब तक ही उचित है जब तक कृत कर्म का पश्चात्ताप उनके हृदय को दग्ध नहीं कर लेता। किसी भी पीढ़ी में जब उनके नसों में बहता हिन्दू खून उनके हृदय का द्वार खटखटाते हुए उछल कर कहने लगेगा—'चल अपनी माँ के घर चल' उसी क्षण वह पश्चात्ताप से ही अर्धशुद्ध हो जाएँगे। और इस प्रकार पश्चात्ताप वृद्धि से उनके हृदय की आत्म-शुद्धि होकर पुनरपि अपनी जाति-माता के द्वार पर आकर अगर वे भीख माँगने लगें और कहें कि, 'हे जाति, जननी, तू फिर से हमें अपनी गोद में ले। हे माँ! तेरे इन भटके हुए बच्चों को फिर से तू अपना प्यार दे।' तो फिर उन्हें भी अपने घर में प्रवेश देना और उन्हें शुद्ध कर लेना धर्मानुकूल ही है। उन्हें जो दण्ड दिया जाय, वह उन्होंने स्वजाति से जिस परिणाम में द्रोह किया हो, उसके अनुरूप ही सौम्य अथवा कठोर रहे, इतना ही काफी है।

"बन्धुओ! धर्म-तत्व का युक्तिसंगत विवेचन कर जो निर्णयात्मक व्यवस्था दी गई है, शास्त्रानुसार परम्परा आदि भी उसकी पोषक ही हैं। वास्तव में जब तक भारत तेजस्वी तथा बलशाली था, उसकी ओर

टेढ़ी आँख देखने का साहस करने वाला एक भी शत्रु संसार में नहीं था, तव तक उसे इस तरह की आपत्ति के निवारण के लिए परम्परागत शास्त्र-वचनों से अथवा सदाचार परम्परा में मार्ग खोजने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी थी, इस कारण उस वलशाली समाज ने म्लेच्छों को फिर से शुद्ध कर लेने का प्रश्न ही नहीं था। यह समस्या तो केवल दुर्वल समाज के लिए ही होती है। शक्ति-सम्पन्न के लिए कभी नहीं थी।

"किन्तु जव भारत दुर्वल हो गया और वर्वर शक-हूण आदि शत्रु प्रवल हुए, तभी धर्मान्तरित पतितों की शुद्धि का प्रश्न पहली वार उत्पन्न हुआ। उस समय देवल-स्मृति के 'सावधीयते शुद्धिरिति' आदि वचनों के अनुसार उन पतितों को समाज ने पवित्र कर लिया। इतना ही नहीं तो भागवत में तथा इतिहास में ऐसा स्पष्ट उल्लेख है कि विष्णु-चरणों में भक्ति-भाव से शरण आए यवन-पुलिन्द आदि म्लेच्छों को भी समाज ने अपनाकर विष्णु-पूजितों में सम्मिलित कर लिया और ऐसा करना ही योग्य था। क्योंकि किसी भी जातीय को अगर हिन्दू-धर्म सत्य प्रतीत हो तो उसे हिन्दू-धर्म में प्रवेश न देना सत्य की अवहेलना करना ही है।

"हे हिन्दू भाइयो! सत्य और सनातन विश्व की जो दैवी सम्पत्ति तुम्हारे पास है, वह वल तुम्हारी जाति के यथार्थ के लिए अथवा उसके स्वामित्व का अधिकार जतलाने-मात्र के लिए नहीं, किन्तु वह तो सारी मानव-जाति के कल्याण के लिए है। वैदिक विधियों का केवल आचरण करना मात्र ही अपना धर्म नहीं, उनका प्रचार करना भी अपना कर्तव्य है। केवल सत्य-रक्षण पर्याप्त नहीं, सत्य-दान भी अपना धर्म है।

"उपस्थित सज्जनो तथा श्रीमान् राज्यमुख्य जी! आपके नियुक्त किये शास्त्रवेताओं ने विचारपूर्वक जो निर्णय दिए, वे संक्षेप में आपके सम्मुख मैंने निवेदन किए हैं। वन्धुओ, कोई भी इस हिन्दू-जाति की शरण में आकर अपनी आत्मा की भूख मिटाने के लिए उस दिव्य धर्म-रूपी अन्न की याचना करेगा तो घर आये हुए उस शरणागत को—चाहे वह नया ही हिन्दू वनने का इच्छुक कोई पर-जातीय हो अथवा पहले धर्म-भ्रष्ट हुआ हो, लौटकर आने की इच्छा करने वाला प्रत्यागत हो, उसे अपना समझकर इस दिव्य सम्पत्ति का हिस्सेदार मानना ही

योग्य है, अगर वह प्रत्यागत है, तब तो उसे शुद्ध कर उसकी पूर्व-जाति में ही उसे स्थान देना चाहिए।

"श्री शिवाजी महाराज ने इस प्रकार शिष्यों की सम्मति से बजाजी निकालकार को फिर से हिन्दू बनाकर तथा उसे उसकी पूर्व-जाति का ही मानते हुए अपनी कन्या को उसकी पुत्रवधू के रूप में अर्पण किया। राजपूतों में अपनी जाति का कितना अभिमान होता है, किन्तु क्या सुरूप सुन्दर इन्द्रकुमारी को म्लेच्छ-शय्या से वापस लाकर फिर से हिन्दू नहीं किया गया? और उसे राजपूत-समाज में ही स्थान नहीं दिया गया? नवागन्तुकों को स्थान देने के लिए समाज में तत्सम नई जातियाँ संगठित करनी पड़ेंगी।

"बन्धुओ! यह कार्य पूर्ण करने के लिए भगवान हमें धैर्य दे। वास्तव में यह कार्य इसके पहले इस भार्गव-क्षेत्र के जंगल में स्थित इस सरोवर के किनारे पर हमारे पूर्वजों ने अतुलनीय धैर्य से किया है। शेर के समान बलशाली पुर्तगालियों द्वारा पीड़ित हज़ारों हिन्दुओं को उन निर्भय ब्राह्मणों ने इसी सरोवर के किनारे पर शुद्धि-संस्कारों द्वारा पवित्र करके हिन्दू-समाज में पुनः वापस लिया था। इस प्रकार का साहस जिन ब्राह्मणों ने दिखाया, उनमें से कितनों को ही शत्रु ने प्राण-दण्ड भी दिया, फिर भी उन्होंने शुद्धि-कार्य अखण्ड रीति से जारी रखा।

"सदस्य बन्धुओ! जो कार्य अपने पूर्वजों ने उस दौर्बल्यपूर्ण काल में गुप्त-रीति से किया, वह आज हमें स्वराज्य-सूर्योदय के उपरान्त खुले रूप से शत्रु की छाती पर चढ़कर करना है। वास्तव में यह कठिन नहीं। जिस परमात्मा ने हमें बाहरी शत्रुओं का मूलोच्छेद करने का सामर्थ्य और शक्ति प्रदान करने की कृपा की, वह परमेश्वर हमें अपने मन के कुविचार-रूपी शत्रुओं का उसी प्रकार विनाश करने की आवश्यक बुद्धि, सामर्थ्य तथा धैर्य प्रदान करे।"

इतना कहकर उस वाग्वीरेश्वर गुरुकुमार द्विजश्रेष्ठ ने अपना स्थान ग्रहण किया। हज़ारों लोगों से भरे हुए उस सभा-मण्डप से 'साधु, साधु' इस प्रकार के भाषण का समर्थन करने वाले शब्द चारों ओर से उठे। इन शब्दों से वह सभा-मण्डप निनादित हुआ। महामात्य

राज्यमुख्य फिर से उठे और सभा को सम्बोधित कर फिर से बोले, "हिन्दुओ ! मेरे बन्धुओ ! पतित परावर्तन के सम्बन्ध में विद्वानों का यह शास्त्र-विहित निर्णय तथा उसे आप सब लोगों का समर्थन देखकर मेरे हृदय को असीम आनन्द हुआ है। केवल पतित-परावर्तन अर्थात् अपने ही बन्धुओं को फिर से अपने धर्म में वापस लेना, इतना भी यदि हमने कानून-सम्मत मान लिया तो भी आज म्लेच्छों के धर्म-छल की तलवार की धार कुन्द हो जायगी। इसलिए भाइयो, अब बोलना काफी हुआ। अब हमें प्रत्यक्ष कृति करनी चाहिए। शीघ्र ही सारे मिलकर उस मंगल-कार्य को समारोह से सिद्ध करें। हमारे धर्मान्तरित बन्धुओं को निमंत्रित करके यज्ञ की अग्नि के सम्मुख वे सब इस सनातन हिन्दू-धर्म में फिर से प्रविष्ट हों।" इन शब्दों को सुनकर सभा ने प्रचण्ड जयगर्जना थी। 'सनातन धर्म की जय।', 'धन्य-धन्य सनातन धर्म', 'जय-जय सनातन धर्म'। सहस्रों कण्ठों से निनादित वह जयध्वनि शत गुणित होकर मण्डप के बाहर मैदान में आई और मैदान में खड़े उन निमन्त्रित पतितों के विशाल समूह ने उन्हीं को उठाकर महागर्जना की, 'हिन्दू धर्म की जय', 'सनातन हिन्दू धर्म की जय।' उन जय-जयकारों के साथ ही वह सभा विसर्जित हुई।

अब लोग प्रतीक्षा करने लगे कि उस शुद्धि-समारोह की निश्चित तिथि का वह पुण्य-दिन कब उदित होता है।

: ४ :

उधर उसी समय पूना से एक एकाकी धीर-वीर घुड़सवार भार्गव ग्राम को ही चला आ रहा था। घुड़सवारी में कुशल वह निर्भीक तरुण सारी रात अपने घोड़े को पूरी गति से बढ़ाए चला आ रहा था। और अभी पौ भी नहीं फटी थी कि वह भव्य सवार भार्गव ग्राम की सीमा पर पहुँच गया। तुरन्त वह सीधा राज्यमुख्य की छावनी की ओर बढ़ा और उनसे भेंट कर उसने उनके हाथ में राजमुद्रांकित सरकारी पत्र दे दिया। उस पत्र में जो भी आनन्ददायक वृत्त होगा राज्यप्रमुख ने वह पत्र पढ़ते ही तुरन्त हर्षोत्फुल्ल मन से किलेदार को बुलवाया और आज्ञा दी कि तुरन्त तोपें दाग कर राष्ट्र-विजय के आनन्द की घोषणा करो। और शीघ्र ही 'धाँय-धाँय'—इस प्रकार एक के

बाद एक तोपों की आवाज़ें होने लगीं। जिसे सुनकर घर-घर से लोग उठे और पड़ोसियों से पूछने लगे—"अजी, यह क्या हो रहा है? किस कारण तोपें दागी जा रही हैं?" इतने में मंगल-वाद्यों की भी ध्वनि निनादित हुई और सैनिकों के जय-जयकार आसमान गुंजाने लगे। "ओ! यह किस बात का आनन्दोत्साह है?" प्रत्येक एक-दूसरे से यह पूछ रहा था। एक ने कहा, "अरे, अरकाट ले लिया होगा?" दूसरे ने कल्पना की उड़ान भरी, "नहीं, यह अवश्य दिल्ली-विजय का ही समाचार होगा? अथवा शायद निजाम को परास्त किया होगा?" ऐसे सैकड़ों प्रकार के तर्क करने वाले उस मेले के हज़ारों लोग वास्तविकता क्या है, जानने के लिए उत्सुकतापूर्वक राज्यमुख्य की छावनी की ओर बढ़ने लगे।

इतने में चर्चा उठी कि उत्तर की ओर रघुनाथराव पेशवा ने प्रचण्ड विजय प्राप्त की है।

छावनी के व्यवस्थापकों ने उन आये हुए लोगों को व्यवस्था से बैठाकर उस भीड़ को एक विशाल सभा का स्वरूप दिया। क्रम से सभी पदाधिकारी पण्डित, सरदार आदि इकट्ठे होने लगे। अन्त में उस भव्य तरुण अतिथि को साथ लेकर राज्यमुख्य भी आ पहुँचे। उसी प्रकार जल-सेनाध्यक्ष भी आकर सुशोभित हुए। सभी लोग राज्यमुख्य के मुख से सही समाचार जानने के लिए अत्यधिक उत्सुक हो उठे। अन्त में राज्यमुख्य खड़े होकर कहने लगे, "मान्यवर जल-सेनाध्यक्ष! अन्य अधिकारी सरदार तथा सज्जनो! हे हिन्दू बन्धुओ! आज ही सुबह यह विद्वान् कर्मवीर, श्रीमन्त पेशवा के स्नेही वीर कवि यहाँ राजदूत के रूप में आए हैं। जिस आनन्ददायक समाचार को आप यहाँ लाए हैं, वह महान् वृत्त अब आप लोग सुनिए—

'हे महाराष्ट्र निवासी बन्धुओ! अपने वीरों ने महाराष्ट्र का वह पवित्र ध्वज पुन: आज अटक पर गाड़ दिया है।'"

यह वृत्त सुनते ही वह महासागर के समान डोलने वाला जन-समुद्र हर्षोल्लास के झंझावात से उछलकर गर्जना कर उठा—'हर-हर महादेव', 'भवानी की जय।' तुरन्त ही सींग बजने लगे। रणभेरी गूँजने लगी। तूतियाँ निनाद करने लगीं। कोई तालियाँ पीट रहे थे

और कोई सीटियाँ वजा रहे थे। तोपों की गर्जना भी वीच-वीच में हो रही थी। प्रत्येक अपनी-अपनी मस्ती में राष्ट्रीय आनन्दोल्लास का प्रदर्शन कर रहा था। आनन्दातिरेक से वयस्कों की आँखों के अश्रु झलकने लगे और कितनों के ही कण्ठ भर आए। राज्यमुख्य तो भावना-आवेग से इतने गद्गद हो गए कि उनके कंठ से शब्द भी नहीं फूट रहा था—

"वन्धुओ ! अब राजदूत स्वयं ही, आपको श्रेय क्या है और प्रेय क्या है, योग्य रीति से समझाएँगे। अथवा वे राष्ट्रकवि होने के कारण राष्ट्र की मूक भावना को व्यक्त करने वाली सूक्तियाँ भी सुनाएँगे।" इतना कहकर राजप्रमुख वैठ गए। अब वह भव्य तरुण नरश्रेष्ठ उठ कर खड़ा हुआ। और खड़े-खड़े ही उसने एक वार जन-समूह का अवलोकन किया। वह जन-समूह भी वल-पुष्ट देह-मूर्ति का अवलोकन कर रहा था। उसकी वह धीर-गम्भीर आकृति ! सारे जन-समाज को उसका व्यक्तित्व प्रभावित कर रही थी।

अपना मस्तक किंचित् झुकाकर सम्पूर्ण सभा को नम्रतापूर्वक अभिवादन करते हुए वह वोला, "समाजनो ! इस अवसर पर कुछ कहने की मेरी योग्यता नहीं, फिर भी सूवेदार जी की आज्ञानुसार ही मैं आपके सम्मुख खड़ा हूँ। किन्तु आपकी जिज्ञासा मैं पूरी तौर पर पूर्ण नहीं कर सकूँगा। क्योंकि उत्तर की ओर से इस अद्भुत विजय का विस्तृत वृत्तांत अभी तक पूना भी नहीं पहुँचा है। तथापि, यह विजय-समाचार सुनते ही सर्वप्रथम मेरे चित्तरूप सरोवर पर जो भाव-तरंग उठे, वे ही मैं आपको सुनाता हूँ। इस महोत्सव में मैं जो एक दीन-हीन हूँ, अपनी ओर से यह गीत-रूपी जंगली फूल राष्ट्र-देवता के चरणों में अर्पण करता हूँ।

क्षण-भर सभा में अपूर्व शान्ति फैल गई और फिर वह वीर-भाट अपनी शास्त्रसम्मत तथा ऊँची आवाज़ में उचित वाद्यों के साथ और अपने वीर वाहु फड़काते हुए राष्ट्र के पराक्रम का वीर-रसपूर्ण नवीन काव्य सुनाने लगा।

पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते अकस्मात् वह रास्ता पर्वत-शिखर पर पहुँच कर जैसे मन लक्ष्यपूर्ति के आनन्द से कृतकृत्य होकर चारों ओर फैली

वनश्री को निहारते-निहारते मस्त हो जाए, उसी प्रकार उस वीर भाट का वीर-गीत सुनते-सुनते वीर-श्रोता भी मस्त हो गए। ऐसे मस्त हो गए कि गीत समाप्त होने की बात भी ध्यान में न आई और वे सभी श्रोता आनन्दमुग्ध होकर वहीं बैठे रहे। मानो वह सारी सभा मंत्रमुग्ध होकर निःस्तब्ध बैठी रही। उस शान्त वातावरण में सबका मन ऐसा कुछ विलक्षण रीति से व्यग्र था कि कोई भी उस शान्ति को भंग करने का साहस नहीं कर रहा था।

थोड़ी देर में जल-सेनाध्यक्ष खड़े होकर बोलने लगे—"बन्धुओ! यह उत्तर भारत दिग्विजयोत्सव प्रमुदित महाराष्ट्र को आज आनन्दाश्रुओं से स्नान करा रहा है। पूना की पुण्यायी तथा पराक्रम का आज सारे विश्व में जोड़ नहीं है। किन्तु हम परशुराम-क्षेत्र निवासियों को आज अनुभव होता है कि सचमुच हम बड़े भाग्यवान हैं। क्योंकि भाइयो! इस महान् विजय का श्रेष्ठ सेनानी इस कोंकण के जंगल का ही एक वीर है। सचमुच धन्य है वह कुल, धन्य है उस कुल की ज्योति, जो आज सारे महाराष्ट्र की शक्ति का ही नहीं, अखिल हिन्दू-समाज का ही उत्कर्ष-केन्द्र बना है। इस भाग्यवान कुल का लालन-पालन इस कोंकण की गोद में ही हुआ है। धन्य है यह कोंकण-भूमि, जिसमें आज इस कलियुग में भी धर्मराज्य स्थापना के लिए परशुराम जैसे पराक्रमी वीर जन्म ले रहे हैं।

"बन्धुओ! आज किसी सम्वत्-प्रवर्त्तक के अनुरूप हमने दिग्विजय प्राप्त की है, यह सत्य है। किन्तु उस वीर कवि के कथनानुसार संवत्-प्रवर्त्तक के समान हमें इस विजय की रक्षा भी करनी है। यह कर्तव्य पूरा करने के लिए श्रीमंत नाना साहेब तथा भाऊ साहेब के सफल नेतृत्व में उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण की ओर शिन्दे होलकर आदि बड़े-बड़े कार्यकर्ता प्रयत्नशील हैं। किन्तु इस पश्चिम समुद्र-तट पर वह हिन्दू-विजय का ध्वज अपने भुजदण्ड पर उठाने का यह महान् दायित्व हम परशुराम-क्षेत्र के रहने वालों की खास ज़िम्मेवारी है। जिस प्रकार उत्तर सीमा पर तुर्क, उसी प्रकार पश्चिम समुद्र-द्वार पर वह दुष्ट फिरंगी और हब्शी, हमारे धैर्य के परकोटे में कब और कहाँ दरार

पड़ती है, होशियारी से इसकी ताक में बैठे हैं।

"आज तक मार्ग के इन कंटकों को उखाड़ फेंकने के लिए हमें पर्याप्त समय और अवसर नहीं मिला। हमारी मातृ-भूमि को अपने ज़हरीले पाश में जकड़ने वाला तुर्की साँप है। उसे मारकर उसका दुर्धर विष पचाने के लिए हमें आज तक अपनी शक्ति का संचय करना पड़ा है। इस विश्व-नाटक में आगामी अंक का कौन-सा दृश्य होगा, यह आज निश्चित रूप से कौन कह सकता है कि आज की अवस्था में पुर्तगाली, हब्शी अथवा अंग्रेज़ों की शक्ति रास्ते के काँटे जितनी ही क्षुद्र है। किन्तु इन काँटों को उखाड़ने के लिए अगर आज उत्तर की ओर हिन्दू-साम्राज्य के विस्तार के फलोन्मुख कार्य को छोड़कर आज ही अपनी शक्ति को पश्चिमी सीमा पर आए फिरंगी को हटाने में खर्च करने लग जाएँ, तब तो वह काम प्रत्यक्ष काटने को उद्यत नागों की उपेक्षा कर काँटों को उखाड़ने की चेष्टा के समान हास्यास्पद, निष्फल और आत्मघातक सिद्ध होगा। किन्तु ऐसा होने पर भी अगली पीढ़ी ने अगर इन काँटों की उपेक्षा की, तब तो महाभारत के यादव-कलह के समान ही घातक होगा। और उसका परिणाम आत्मनाश हुए बिना नहीं रहेगा, और यह कलंक इस पीढ़ी के सर पर मढ़ा जाएगा।

"किन्तु अब उत्तर दिग्विजय का वह कार्य कुछ मात्रा में पूर्ण हो गया है। इसलिए अब इन पुर्तगाली, हब्शी तथा अंग्रेज़-रूपी कंटकों को मार्ग से उखाड़ कर पश्चिमी समुद्र की विजय का रास्ता साफ करना चाहिए। क्योंकि महाभारत के यादवीय में जिस तरह क्षुद्र बातों का परिणाम सम्पूर्ण कुलनाश में हुआ, उसी प्रकार के इस काल में आज क्षुद्र लगने वाले ये कंटक प्राणघातक बाणों का रूप धारण नहीं करेंगे यह निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है?

"आज सारे भारत में इस बात की चिन्ता किसी के मन में है तो वह केवल एकमात्र श्रीमन्त नाना साहेब के और शायद इसलिए उनका वीर तुलाजी के साथ अति दुःखद झगड़ा चल रहा है, तुलाजी मदान्ध है और सामर्थ्यवान है। यदि वह कम मदान्ध होता अथवा अधिक सामर्थ्य-सम्पन्न होता तो उसका पराक्रम निश्चय ही सफल होता। अगर उसमें बलोन्माद न होता तो राष्ट्रधुरीणों की आज्ञाएँ

उसने शिरोधार्य की होतीं, अथवा अगर वह अधिक प्रबल होता तो भारत की राष्ट्र-धुरा उसने अपने समर्थ कन्धों पर उठाई होती। किन्तु आज समस्त हिन्दू जाति के संरक्षण-संवर्धन का नेतृत्व करने की हिम्मत, शक्ति और पात्रता से विभूषित हमारे प्रधान मंत्री से ईर्ष्या नहीं, अपितु प्रत्यक्ष युद्ध करने के लिए दुर्दैव से तुलाजी उद्यत हुआ है। इस तरह के अन्तर्कलह के परिणामस्वरूप कोंकण के ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत के कल्याण के लिए आवश्यक पश्चिमी—सिन्धु-स्वातन्त्र्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए एकमुखी समुद्री सामर्थ्य का अभाव देखकर तुलाजी का यह राष्ट्रघाती घमण्ड कुचलना श्रीमन्त के लिए अनिवार्य है। हिम्मती बहादुर दयाजी अथवा वीर श्रेष्ठ रघुजी के समान तुलाजी ने भी अपने राष्ट्रघाती हठ को त्याग दिया होता तो श्रीमन्त नाना साहेब ने भी उसका रक्षण किया होता, परन्तु बल में उन्मत होकर तुलाजी ने ब्राह्मणों तथा प्रजा पर अत्याचार किया। अनेक दुष्कृत्य किए, सुलह के लिए आये हुए पेशवा के श्रेष्ठ दूतों के नाक-कान काट कर वापस भेज कर किसी गुंडे को भी लज्जित करने वाली कायरता प्रकट की। इस कारण वह छत्रपति को भी अप्रिय हुआ। वह इतना मदान्ध हुआ है कि राष्ट्र तो दूर रहा, नानाजी जैसे सौम्य-स्वभावी और सूझ-बूझ वाले बन्धु से भी नित्य का कठोर वैर बांध रखा है; यह उसकी मदान्धता ही उसको विनाश की ओर ढकेल रही है। तुलाजी मानो नया दुर्योधन ही है। दुर्योधन के समान सुई की नोक के बराबर भूमि के लिए, इतने क्षुद्र कारण के लिए मदान्ध हठ के अधीन होकर आज तुलाजी जैसे वीर भी सारा राज्य डुबोने के लिए तत्पर हैं। आज हमसे वह पृथक् हुआ है यह सचमुच ही दुःखकारक है, शोककारक है। क्या श्रीमन्त पेशवा और क्या तुलाजी, दोनों हमारे ही हैं।

"किन्तु बंधुओ! हिन्दू साम्राज्य-हित की दृष्टि से जो उचित लगा वही मैंने कहा है। मान लीजिए अगर वीर तुलाजी नाना साहेब के स्थान में होते और नाना साहेब तुलाजी के स्थान पर होते तो भी मैंने यही कहा होता। किन्तु इस अप्रिय गृह-कलह से भी अधिक शोक-कारक जो बात नाना साहेब को बहुत पीड़ा देने वाली है, वह है इस

गृह-कलह में परकीयों की सहायता लेना । जिस बात से आज तक हमारा इतना आत्मनाश हुआ, वह हमारी आपस के झगड़ों में परायों की सहायता लेने की आत्मघाती आदत है, जो दुर्भाग्य से अभी भी नहीं गई। यह हमारा अक्षम्य दोष है, किन्तु यह केवल किसी व्यक्ति-विशेष तक ही मर्यादित दोष नहीं, किन्तु वह हमारा राष्ट्रीय दोष हो गया है । जब तक अन्य लोग गृह-कलह में परकीयों की सहायता लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं तब तक ऐसा करना दोषास्पद है यह पता होते हुए भी किसी ने निरुपाय होकर उसी निंद्यसाधन को स्वीकार किया और कार्य सिद्ध होते ही उस निंद्यसाधन का पूर्णतया त्याग करने का निश्चय रखा, तब तो वह दोष राजनीति में परिस्थिति का ही माना जाना चाहिए। देखिए, शिवाजी के सौतेले भाई व्यंकोजी द्वारा विजयपुर के बादशाह की मदद लेते ही, क्षत्रपति महाराज को सारी नीति को पुनः सोचना पड़ा और उन्होंने व्यंकोजी के साथ के गृह-कलह में विधर्मी बादशाहतों में से कुतुबशाही की सहायता ली। जहाँ महारानी ताराबाई को श्रीमन्त पेशवा का विनाश करने के लिए हिन्दुओं के कट्टर दुश्मन मुगलों से साँठ-गाँठ करना अपराध प्रतीत नहीं होता, वहाँ ताराबाई समेत परकीयों की सहायता लेकर पेशवाओं को पराजित करने के लिए तुलाजी जूझता रहा और आगरे के वंश में एक भाई ने दूसरे भाई के विरुद्ध अंग्रेज़ों की सहायता ली । उधर हिन्दुओं पर अत्याचार करने वाला वह दैत्य सिद्धजौहर मानाजी राव पर आक्रमण करने आया और भाइयों द्वारा याचना करने पर भी तुलाजी तैयार नहीं हुआ। अतः उस तुलाजी को दण्ड देने के लिए काँटे-से-काँटा निकालने की नीति का अवलम्ब नाना साहब को करना पड़ा। तुलाजी के विरुद्ध लड़ाई में नाना साहेब ने अंग्रेज़ों को साथ में मिला लिया होता तो नाना के शत्रुओं ने तुलाजी और अंग्रेज़ों के साथ मिलकर नाना के विनाश की योजना बनाई होती ।

"बन्धुओ ! अंग्रेज़ों की सहायता के बिना तुलाजी को जीतना सम्भव नहीं था और उस पर जब तक विजय नहीं पाई जाती, तब तक समुद्र पर स्वराज्य के नौ-सेना की एकमुखी सत्ता स्थापित नहीं हो सकती थी, और तब तक हमारा समुद्री स्वातन्त्र्य भी सुरक्षित नहीं

था। इसी कारण नाना साहेब ने अंग्रेज़ आदि शत्रुओं के नाश के लिए ही अंग्रेज़ों की सहायता तुलाजी के विरुद्ध ली और वह भी बाणकोट नामक एक निरुपयोगा क्षेत्र उन्हें देकर। अंग्रेज़ों को तुलाजी के अतिरिक्त कोई जीत ही नहीं सकता। वास्तव में ही अगर यह सच होता तो तुलाजी के विनाश के लिए अंग्रेज़ों की सहायता लेना पाप होता, किन्तु यह सच नहीं है। तुलाजी के चले जाने पर महाराष्ट्र का सारा पराक्रम ही नष्ट हो गया है, ऐसी कोई बात नहीं है। तुलाजी के जाने से तो कोंकण की स्थल-सेना और जल-सेना एक-सूत्र हो जाएँगी। कहाँ वह शिवकाल पूर्व का लुटेरों से त्रस्त कोंकण, और कहाँ आज का यह स्वतन्त्र कोंकण। कल के वे हिंस्र लुटेरे आज त्रस्त, भयग्रस्त जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अपनी गुप्त गुफाओं से बाहर कदम रखने तक की उनकी हिम्मत नहीं, और भय के कारण गुफाओं के अन्दर भी उन्हें निश्चिन्तता नहीं।

"किन्तु भाइयो ! उन तीन गुफाओं—बम्बई, गोवा और जंजीरा को उखाड़ कर उन परायों की सम्पत्ति पर आँख लगाए लुटेरों को नाम-शेष करें और अपना यह पश्चिमी सिन्धु पहले की तरह निर्वैरी, उपद्रव-शून्य तथा स्वाधीन करने के लिए शीघ्र कटिबद्ध हों। यह हमारी कोंकण की भूमि जैसे हमने स्वतन्त्र की, उसी प्रकार से कोंकण के वीरो ! अब कोंकण के सागर की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए कमर कस लो। यह स्वतन्त्रता जिस सेना से सुरक्षित हो सकती है, वह अपना नाविक दल दुष्ट विधर्मियों के लिए दुर्जेय हो जाए। यह रत्नागिरि, यह अजंनदेल इन बन्दरगाहों में नवीन रण-नौकाओं के निर्माण का काम ज़ोरों से चालू हो। दिन-रात हज़ारों जहाज़, युद्धपोत, व्यापारिक नौकाएँ चीनी तथा विलायती ढंग के लड़ाकू यान आदि अनेक प्रकार की नौकाओं से सारे बन्दरगाह भर जाएँ। वीरो ! हमारे कोंकण के शिल्पियों से बढ़कर और तज्ञ कारीगर कौन है। नाविक-युद्ध में हमारे इन कोंकण नौ-सेनानियों को पराजित करने वाले दूसरे कौन नौ-रणशूर है ? इसलिए बन्धुओ ! दुर्जेय नौ-दल निर्माण करके अपना यह पश्चिमी समुद्र निष्कंटक करने का कर्तव्य अपने कोंकण-वासियों का ही तो है। मित्रो ! यह मेरा निजी अनुरोध अथवा उपदेश-

मात्र नहीं, किन्तु स्वयं श्रीमंत पेशवा की आज्ञा आज के इस जयोत्सव के मुहूर्त्त पर सब सम्मिलित मराठों को सुनाने के लिए भेजी गई है, वही मैं आपके सामने रख रहा हूँ।

"जिस एकछत्र नाविक दल का निर्माण स्वयं छत्रपति शिवाजी महाराज ने किया, जिसके आज के अग्रणी स्वत: श्रीमंत पेशवा हैं, जिस नौ-दल में श्री सावंत, श्री मानाजी राव आदि प्रमुख सरदार हैं और जिन्होंने हब्शी तथा फिरंगी नौ-दलों का कितने ही समुद्री-युद्धों में विनाश किया है, वह हमारा एकछत्र नौ-दल हिन्दवी महासागर के इन विधर्मी मगरमच्छों को नष्ट किए बिना नहीं रहेगा।

"देखिए, पश्चिमी समुद्र के स्वातन्त्र्य-रण में चारों ओर से रण-नौकाओं का एक मोर्चा बाँधकर शत्रु पर अगर आक्रमण किया जाए और उसी समय कलकत्ता-कर्नाटक-बम्बई की ओर मराठों की स्थल-सेना को, इन सब गोरों को वहाँ से उखाड़कर समुद्र में धकेलने की योजना बनाई जाए, तब तो पश्चिमी समुद्र पर स्वामित्व स्थापित करने में सहज ही सारा हिन्द-महासागर भी स्वतन्त्र हो जाएगा। इसलिए हे भारत वीरो! भूमि की स्वतन्त्रता जिस प्रकार तुमने प्राप्त की, उसी प्रकार एकछत्र नौसेना का निर्माण कर भारतीय महासागर की स्वतंत्रता के लिए सुसज्ज हो जाओ। उठो बन्धुओ! जिस दिन हमारे नवोदित हिन्दू-राष्ट्र की नवनिर्मित प्रबल जलसेना समुद्र की लहरों पर सवार होकर तोप-रूपी दुर्गमों से भारत के सुदूर भविष्य पर सजग पहरा देते हुए विचरण करेगी, उस दिन वास्तव में आज प्राप्त यह हिन्दू स्वातन्त्र्य चिरस्थायी होगा।"

इस प्रकार प्रेरणादायक भाषण कर जलसेनाध्यक्ष जब नीचे बैठ गए तो फिर से राजप्रमुख खड़े होकर कहने लगे, "भाइयो! जल-सेनाध्यक्ष ने अभी-अभी जो श्रीमंत पेशवा की अत्यन्त उपयुक्त आज्ञा हमें सुनाई है वह हमारे लिए शिरोधार्य है। सचमुच वह आज्ञा समय के अनुरूप ही है, क्योंकि आज के इस विजयानन्द में मग्न होकर आगामी संकट को भूलना योग्य नहीं होगा। अंग्रेज़ों को हम भली-भाँति पह-चानते हैं। उत्तर की ओर की महान् विजय-मात्र से जब हम निवृत्त हो जाएँगे तो हम इनसे भी शीघ्र निबट लेंगे। मुझे दृढ़ विश्वास है कि

जिस प्रकार आज हम सिन्धु नदी पर विजय प्राप्त करने का महोत्सव सम्पन्न कर रहे हैं, उसी प्रकार शीघ्र ही पश्चिमी समुद्र पर स्वामित्व स्थापित कर दूसरा सिन्धु-विजय महोत्सव सम्पन्न किए बिना हम नहीं रहेंगे। यद्यपि आज हमने मुसलमानों के विजय-उन्माद का नशा उतार दिया और यद्यपि म्लेच्छों के घमण्ड को भी हमने कुचल डाला है तो भी हिन्दू भाइयो ! इस वास्तविकता को हमें नहीं भूलना चाहिए कि मातृभूमि पर हुए वे भयंकर घाव अभी पूर्ण रीति से भरे नहीं हैं। जिस प्रकार हमारे वीर कवि-मित्र ने अपने काव्य में वर्णन किया है कि वे आक्रमणकारी हूण अब कहाँ हैं, उस प्रकार अभिमान से पूछने लायक प्रगति अभी हमने नहीं की है। इसलिए इस विजयोत्सव के निमित्त अगर उपयुक्त कार्यक्रम कोई हो सकता है तो यही कि पर-धर्म में जुल्म-जबरदस्ती से ले जाये गए अपने बन्धुओं को शत्रु के धर्म-बन्धनों से मुक्त कर फिर से स्वधर्म में लाया जाए। इसीसे हमारे जाति-विवेक पर परधर्मियों के किये गए घावों का उचित उपचार हो सकता है !

"भाइयो ! पूर्व निश्चित किया हुआ कल का शुद्धि-यज्ञ यही हमारी विजय का उचित समारोह होगा। उसमें भी एक विशेष बात यह होगी कि यह विजयगीत गाने वाले श्रेष्ठ कवि कल के शुद्धि-यज्ञ की अग्नि से स्वयं शुद्ध होने वाले हैं। हाँ, वे वास्तव में शुद्ध होकर अपने पवित्र हिन्दू-धर्म में प्रवेश करेंगे। आपके चेहरों पर प्रकट होने वाला आश्चर्य स्वाभाविक है, किन्तु सभाजनो ! जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह सच है। विजयगीत के प्रारम्भ में स्वयं कवि ने ही अपना 'हीन-पतित' ऐसा परिचय जो कर दिया था वह केवल औपचारिक विनय-मात्र नहीं था, अपितु वह वास्तविक सत्य था। मुझे श्रीमंत ने इस पत्र में उनके सम्बन्ध में संक्षिप्त वर्णन लिखा है। और भाइयो ! कल के शुद्धि-समारोह में उसका विस्तृत समाचार आपको मिलेगा ही। इसलिए इस समय इतना ही पर्याप्त है और कल के समारोह का फिर एक बार सबको स्मरण दिलाकर आज की यह सभा समाप्त होने की मैं घोषणा करता हूँ।"

इतना कहकर राजप्रमुख ने आश्चर्य और आनन्दपूर्ण वातावरण में सभा का विसर्जन कर दिया।

अब सब लोग अलग-अलग गुटों में लौटने लगे। कोई सोच रहे थे, कोई भिन्न-भिन्न तर्क-वितर्क कर रहे थे; और उनके उलटे-सुलटे विचारों का प्रतिबिम्ब उनके संवादों से स्पष्ट दिखाई दे रहा था। कोई कह रहा था, "कौन होगा भला यह राजपूत और यह पतित कब और कैसे हुआ होगा" दूसरा कोई अपने मन में मराठों के अटक की छावनी का चित्र अपनी आँखों के सामने ला रहा था। कोई अपने मन में कल्पना कर रहा था कि अपना कोई पुत्र, पिता अथवा दूसरा कोई सम्बन्धी वहाँ पर पराक्रम कर रहा होगा और उनके पराक्रम के फलस्वरूप उसे कोई उपाधि या पुरस्कार मिला हो। अन्य किसी का मन अपने सम्बन्धी के युद्ध में काम आने की कल्पना सें भय-शंकित हो रहा था। उसके उस प्रकार की शंका प्रकट करते ही दूसरा कोई उसको धीरज वँधाने के लिए कह देता था—अरे, वह भी वीरगति ही है। वह चला जाए तो उसका स्थान कोई और पूरा नहीं कर पाएगा। किसी ने बीच में ही प्रश्न उपस्थित किया—क्यों जी, अपनी सेनाएँ क्या अब अटक के पार भी जाएँगी। उस पर कोई निराशावादी बोल उठा—अरे भाई, अपने हिन्दू अटक के पार कैसे जाएँगे। तो दूसरे किसी उत्साही युवक ने प्रतिवाद कर दिया—अरे, जाएँगी ही नहीं, यह कौन कह सकता है।

अब सब-कुछ अपनी आशा के अनुसार पूर्ण हो ही जाएगा, ऐसा समझकर वे उच्छृंखलतापूर्वक जय-जयकार कर रहे थे तो अन्य कई यूँ ही भविष्य के संकटों की कल्पना करके लम्बी आहें भर रहे थे। मानो सब-कुछ बुरा ही होने वाला है, ऐसा समझने वाले अभागे ज्योतिषी के समान चिन्ताग्रस्त हो रहे थे।

उधर वे तोपों की गर्जनाएँ भी बीच-बीच में सुनाई दे रही थीं, और इधर मानो जन-जन के मानस-यज्ञ में भड़की हुई राष्ट्र-भक्ति, आशा, आकांक्षा, उत्साह आदि भावनाओं की अग्निज्वाल-रूपी वह भगवा ध्वज सर्वोच्च स्थान में आकाश में सतत फहरा रहा था।

: ५ :

भार्गव ग्राम के क्षेत्र में ही समुद्र के किनारे पुष्पलताओं एवं वृक्षों से आच्छादित एक पुराण-प्रसिद्ध तपोवन था। जो सुगंधित पुष्प-वेलों

की पंक्तियों, कोयल आदि पक्षियों के मधुर कूजन और मृग आदि सुन्दर पशुओं के विहार-स्थल से सुशोभित था। ऐसे उस तपोवन में एक सुन्दर, स्वच्छ जलाशय तीर्थ-स्थान था। कंवल पुष्पों से युक्त उस तीर्थ-स्थान पर नारियल, आम, कटहल, सुपारी, कर्दली की आदि वृक्ष-लताओं ने अपनी शाखाओं को मुकलित फल-पुष्पों में इस प्रकार गूंथ रखा था, मानो आकाश में एक सुन्दर मण्डप ही तैयार किया था। सूर्य की किरणों से चमक रहे जल को इस नैसर्गिक मण्डप ने अपने छत्र द्वारा और भी सुन्दर बना दिया था। दिन निकलते ही सैकड़ों ब्राह्मण स्नान करके पुण्य उषा के पवित्र स्तोत्र गाते हुए उस अति पावन तपोवन में जाते दिखाई दे रहे थे। उस तीर्थ-स्थान के चारों ओर जो विस्तीर्ण समतल भूमि थी, वह समिधा, दर्भ, घृत, तिल आदि यज्ञीय सामग्री से परिपूर्ण थी। थोड़े ही समय के पश्चात् वहाँ यज्ञीय अग्नि प्रदीप्त हुई। सारा उपवन विशुद्ध स्वर में गाये गए वेद-मंत्रों के घोष से तथा हवि-लुब्ध अग्नि की पूजा-हेतु उत्सुक-जनों के बोलों से गूंज गया था। वह स्निग्ध, सुगन्धित तथा मंगल-यज्ञीय धूम्र भी वह स्थान छोड़कर दूर नहीं जाना चाहता था और वह भी लोलुप की तरह उस तीर्थ-स्थान के इर्द-गिर्द मंडरा रहा था। स्वच्छ आकाश में उस यज्ञीय धूम्र के रौप्य-वर्ण वलय फैले हुए थे, मानो उस लम्पट धूम्र ने अपने स्वत: के अन्त:करण की लोलुपता का ही जाल फैलाया हुआ हो अथवा उस रौप्य-वर्णी धूम्र-वलयों के दिव्य झुण्ड-के-झुण्ड मानो देवों की विविध आकृति एवं दिव्य विमान होंगे, ऐसा आभास हो रहा था।

वह अपूर्व समारम्भ देखने के लिए शनै:-शनै: लोग भी उस उपवन में एकत्र होने लगे। शीघ्र ही उत्साह-परिपूर्ण वह समाज बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठा हुआ दिखाई देने लगा। वृद्ध पौर-जनों को सबसे आगे स्थान दिया गया और बाकी को वह सारा समाज यज्ञ-शरण, ऐसे उस सागर-तीर पर इतना अन्दर तक तथा इतना घना फैला हुआ था कि मानो उस समुद-तट पर बेलों का उपवन ही फैला हुआ था।

इसी समय उस समुदाय में से एक गम्भीर ध्वनि उठी, "रास्ता दीजिए! हटिए, एक ओर हटिए! अपने बन्धुओं को मार्ग दीजिए। चलिए, एक ओर हो जाइए।" पीछे-पीछे वह तरुण, वीर राजदूत के

नेतृत्व में सैंकड़ों पतित-जनों का समूह उस पवित्र तीर्थ की ओर बढ़ता दिखाई दिया। फिर वे सभी उस सरोवर में सचैल-स्नान कर बाहर आये। सभी ने अपने जीर्ण-शीर्ण पुराने वस्त्र त्याग कर नये प्रोक्षण किये हुए कटिवस्त्र धारण किये। फिर हुई क्षौर-विधि; और साथ ही प्रत्येक के सिर पर वह शास्त्र-भूत शिक्षा और अंतःकरण में हिन्दुत्व की गौरवमयी भावना विराजने लगी। उसके पश्चात् सबको अभ्यंग स्नान कराने के लिए वे विप्रवर भिन्न-भिन्न जलों का आह्वान करने लगे, "हे गंगे, हे यमुने, हे सिन्धु, हे नर्मदे, हे पतित-पावन गोदे, हे कृष्णे-कावेरी, आइये! हे नदियो, आइये और इस पवित्र जल में अपना पावित्र्य उँडेलिये!" इस आवाहन के संस्कार से उन पतितों के मन में अखिल भारतीय जीवन एक है, यह स्मृति जागृत हुई, स्वतः के समाज के प्रति प्रेम की भावना उमड़ आई तथा उस समय वे सभी उस सरोवर में स्नान करके अन्तःकरण से और शरीर से विमल तथा शुद्ध हो गये। फिर सबने विश्व-चक्षु रूप भगवान सूर्य-नारायण को अंजुलि से अर्घ्य प्रदान कर सरोवर के तीर पर जो मंगल सवत्सा धेनु थी, उसे स्पर्श किया और उस यज्ञीय अग्नि का दर्शन कर सालंकार वस्त्र परिधान किये। बाद में सब ने अत्यन्त उत्साह से जयघोष किया, 'सनातन धर्म की जय।' उस जय-जयकार को उपवन में एकत्र हजारों लोगों के दोहराते ही मानो वह उपवन उन लोगों की राष्ट्रभक्ति और उत्साह का प्रत्यक्ष स्वरूप ही बन गया। पुनः-पुनः जय-जयकारों की ध्वनि और प्रतिध्वनि उठ रही थी, 'धर्म की जय, हिन्दू-धर्म की जय, सनातन धर्म की जय, पुराण धर्म की जय, भगवान श्री रामचन्द्र की जय।'

पुनरपि हिन्दू-धर्म में प्रविष्ट हुए उन बांधवों को सभी लोग कालांतर से मिलने वाले बंधुओं की तरह उत्कट प्रेम से आलिंगन करने लगे। रघुवीर की जय-जयकार-रूपी सुधारस पान से उनके रोम-रोम में भक्ति-उन्माद संचरित हो उठा। राम-नाम के सोमरस पान से वे सब परस्पर को राममय ही समझने लगे तथा वे सब हिन्दू एक-दूसरे का अत्यन्त प्रेमभाव से आलिंगन करने लगे। बड़ा बड़ा न रहा और छोटा छोटा न रहा। ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं रहा और चमार चमार न रहा। सारे भेद लुप्त होकर प्रेमानन्द के एक ही रस में सभी रंग गये। एक ही

विशाल समाज-जीवन में अपने हृदय की सभी भावनाएँ एकरूप कर सब जातियों की सरितायें उस हिन्दुत्व के विशाल सागर में निर्विशेष रूप में मिल गईं। 'जय कृष्ण—जय गोविंद' ऐसा जय-जयकार करते हुए, धर्मभ्रष्ट होने के कारण वियोगित बंधु अपनी बहनों को और पुत्र अपनी माताओं को गले मिले और फिर कुछ ही क्षणों में म्लेच्छों द्वारा किये गए अत्याचारों को स्मरण कर मुक्त-कंठ से रोने लगे तथा इस प्रकार अपने हृदय में संचित दुःख के आवेग को शांत किया।

किन्तु उस पुनर्मिलन ने सबसे अधिक किसी के हृदय को हँसाया अथवा रुलाया होगा तो वह उस कविवर राजदूत तरुण को। उसकी गम्भीर तथा विशाल भालान्वित मुख-मुद्रा पर क्षण-क्षण में मन की संवेदनाओं के अनुसार बदलते भाव प्रकट हो रहे थे, मानो उसकी वह मुद्रा लोगों की भाव-भावनाओं तथा सुख-दुःखों को प्रतिबिम्बित करने वाला स्वच्छ दर्पण ही हो। स्वजातियों से पुनर्मिलन के आनन्द का पहला ज्वार कुछ कम होने पर वह राजदूत उठ कर खड़ा हुआ और सबको नम्र भाव से नमस्कार कर कहने लगा, "हे बंधुओ, हम पतित तथा संस्कारहीन थे, किन्तु अब स्वयं ब्राह्मणों ने हिन्दू-विधि के अनुसार संस्कार कर हमें पुनरपि शुद्ध कर लिया है। हम सबके लिए सभी देवताओं में प्रथम दर्शनीय दो प्रमुख देवता हैं—पहला है हमारे हिन्दू-धर्म के, दंड और शक्ति का प्रतीक—भगवा ध्वज, और दूसरा है वह दूर दिखाई देने वाला पुराना दुर्लक्षित एवं भग्न समाधि-स्थल।

"बन्धुओ, पुनः हिन्दुकरण की जो सार्वजनिक विधियाँ हैं, वे तो सब सम्पन्न हो ही चुकी हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और उचित व्रात्य-स्तोत्रादिक ऐच्छिक व्रत हैं। वे भी सम्पन्न हो जायेंगे, किन्तु जिसके द्वारा सचमुच रक्त एवं प्राणों का हिन्दुकरण होता है वह मुख्य व्रत तो इस समाधि का दर्शन ही है, क्योंकि यह जीर्ण समाधि एक ऐसे राष्ट्र-पुरुष की है जो कि अपना कर्तव्य-मात्र कर गया, किन्तु जिसका नाम भी लोगों की स्मृति में आज शेष नहीं है। बंधुओ, कोंकण के वे धर्म-भक्त एवं तेजस्वी ब्राह्मण इसी तपोवन में उस समय रहा करते थे। पुर्तगालियों के पीड़ादायक शासन में रहकर भी वे गुप्त रूप से अपने धर्मान्तरित बंधुओं को यहीं पर शुद्ध कर स्वधर्म में प्रविष्ट कर लेते थे।

आगे चलकर एक बार अकस्मात् शत्रु को उसका भेद लग गया और पुर्तगाली शासक वहाँ ससैन्य आ धमके। सहसा उन धर्मान्तरितों और शुद्धि करने वाले ब्राह्मणों को घेरकर उन्होंने उनका संहार प्रारम्भ कर दिया। उस समय उस भगदड़ में एक वीर गोसाईं खड़ा होकर शत्रुओं की खड्गों, खंजरों तथा संगीनों को चुनौती देता हुआ गरजकर बोला, 'ओ विधर्मी दुष्ट दैत्यो, तुमने बलपूर्वक मेरा शिशु अवस्था में ही अपहरण किया था और मेरे धर्म को भ्रष्ट किया था, किन्तु ओ क्रूर-कर्मियो! मेरा हृदय तो हिन्दू-का-हिन्दू ही रहा है। अब शास्त्राग्नि-स्पर्श विधि से पवित्र होने के लिए मैं यहाँ आया, किन्तु वह अगर आपको उचित न लगे तो धर्म-युद्ध की शस्त्र-रूपी अग्नि के स्पर्श से ही अब मेरे हृदय की शुद्धि होने दीजिए। आओ, फाड़ो यह मेरा हृदय। देखो, उसके अन्दर के रक्त का बिन्दु-बिन्दु देखो! उस बिन्दु-बिन्दु में अभ्रष्ट विशुद्ध शक्ति को देखो! देखो, प्रत्येक बिन्दु कैसा अणु-परमाणु तक पूर्ण शुद्ध हिन्दू है!'

"और सचमुच ही उसकी चुनौती का सत्यासत्य परखने के लिए उन दुष्ट पुर्तगालियों ने उसकी छाती में संगीन भोंक दी। ख़ून बाढ़ की तरह वह निकला और साथ ही उस गोसाईं के प्राण भी शरीर छोड़ गए। तो भी वह साधु अन्तिम श्वास तक गरज रहा था, 'मैं हिन्दू हूँ। हाँ-हाँ, मैं हिन्दू हूँ।' वे पुर्तगाली दैत्य भी उसका वह अद्भुत आत्म-यज्ञ देखकर आश्चर्य से चौंक गए। उसी हुतात्मा साधु की यह जीर्ण समाधि है। आज भी मेरी आँखों के सामने ख़ून की छलछलाती हुई बाढ़ में, 'मैं हिन्दू हूँ' उस समय उस साधु ने स्वतः के नाम-रूप की आहुति दी, किन्तु उसी के कारण यह राष्ट्र आज नाम पा रहा है। इस प्रकार क्लेशपूर्ण वीरता को स्वयं वरण करने वाला वह हुतात्मा साधु हम सबको राष्ट्र-भक्ति निमित्त अविचल साहस प्रदान करे। इसी प्रकार यह हमारा पवित्र भगवा ध्वज हमको पराक्रम के लिए बाहुबल दे। बंधुओ! अपने हृदय पर आज इस सनातन सत्य को अंकित कर रखो कि संसार में धर्म के बिना बल पाशवी सिद्ध होता है। यह जितना सही है, उतना ही बलहीन धर्म भी पंगु है, यह भी सही है।"

इतना बोलकर उस राष्ट्र-भक्त राजदूत ने स्वयं आगे होकर समाधि

को साष्टांग दंडवत् किया। उसी का अनुकरण कर उन सभी लोगों ने भी अत्याचार सहने वाले उस साधु की समाधि को और बलपूर्वक जूझने वाले उस भगवे झण्डे को दंडवत् किया। वह भगवा ध्वज मानो सचमुच ही साधुत्व का, और साधुओं का दुष्टों से संरक्षण करने, व्रत का प्रतीक ही है। "साधुओं की सत्व-शक्ति और उसी के साथ साधुओं का परित्राण करने की शस्त्र-शक्ति, ऐसी दोनों शक्तियों का निवास जिसमें होता है, वे ही लोग वास्तव में इहलोक और परलोक के दोनों पुरुषार्थों को सिद्ध कर लेते हैं।"

उसके पश्चात् सबने यथोचित फलाहार कर, रुचिकर वन-विहार के आनन्द का स्वाद लिया।

वन-योजना समाप्त होते ही मृदंग धीमा-धीमा नाद करते हुए तालबद्ध हो गये। झाँझ-मंजीरे उनका साथ देने लगे और उसके साथ ही आकाश में पताकाएँ ऊँची-ऊँची फड़कने लगीं। स्थान-स्थान पर भजन-मंडलियों ने पंक्तिबद्ध होकर मंगल हरिनाम की गर्जना करते हुए परिक्रमा करना प्रारम्भ किया। सब एक-दूसरे के माथे पर गुलाल लगाने लगे तथा गले में सुगन्धित पुष्प-मालाएँ पहनकर तथा हाथ में झाँझ लेकर हरि-नाम की धुन गाते हुए उन भजन-मंडलियों में शामिल होकर नाचने लगे। अभी-अभी हिन्दू-धर्म में प्रवेश किये हुए बंधु भी उस जलूस में मिल गए—सदा के लिए हिन्दू-समाज में विलीन हो गए—अब दोबारा कभी भी पृथक् न होने के लिए।

मृदंगों के धीमे-धीमे नाद मधुर ताल में अब बहुत ही रंग भर गया और वह सारा हिन्दू-समाज एक व्यक्ति के समान एकरस होकर एक मुख से, एक हृदय से, एक स्वर से गरजने लगा—"हे गोविन्द, हे गोपाल, हे विट्ठल, हे ईश्वर!"

ईश्वरीय शक्ति ही मानो भक्ति के प्रभाव से भजनरूपी सगुणरूप धारण कर जुलूस बनकर अवतरित हुई थी। ऐसा वह भक्ति-रस से ओत-प्रोत जुलूस भार्गव-ग्राम आ पहुँचा। फिर वट-वृक्ष के चबूतरे के आस-पास के विस्तीर्ण मैदान में पान-सुपारी, गुलाबजल-सिंचन तथा सुगंधी इतर वितरित हुए। इतने सब औपचारिक कार्यक्रम संपन्न होने के बाद राजप्रमुख ने कार्यक्रम समाप्त होने की घोषणा की। किन्तु लोग

तक नहीं करते थे, पर नींद नहीं रहे थे । उन्होंने पुनः-पुनः राजप्रमुख से प्रार्थना की कि रख दिये हुए आश्वासन के अनुसार उस राजपूत के विषय में जानकारी दी जाए । राजप्रमुख ने भी लोगों का वह आग्रह एवं मन जानने की उत्सुकता देखकर उस राजपूत को अपना रोमांचकारी जीवन-वृत्त सबको सुनाने की प्रार्थना की । राजप्रमुख बोले, "श्रीमंत पेशवा ने ही पत्र में लिखा है कि आपकी जीवन-कथा बड़ी सुस्वाद्य है । इसलिए आप अब वह वर्णन ही सुनाओ । देखिए, आपने म्लेच्छों का देश देखा, विविध जाति-नीतियों का विपुल पर्यटन भी किया । संकट भी बहुत देखे तथा उन पर विजय भी प्राप्त की । इस तरह आपका विविध प्रकार का अनुभव है । शौर्य-पराक्रम में भी आप किसी से कम नहीं । अद्भुत पराक्रम करते हुए श्रीमंत बाजी राव का विश्वास और प्रेम आपने संपादन किया हुआ है । फलाणा के युद्ध रणांगन में आपने स्वयं अपनी पैनी तलवार से उस नवाब को चीर डाला था । ऐसे आप-जैसे पुरुष श्रेष्ठ तथा वीर श्रेष्ठ राजपूत का जीवन-वृत्त सुनने के लिए लोग भला क्यों नहीं उत्सुक होंगे ?

"वीरवरों के वीर-रसपूर्ण युद्ध-गीत कवियों द्वारा गाये जाने की परम्परा है । किन्तु आज यहाँ पर आपसे श्रेष्ठ तथा सुगम कौन कवि है ? इस समय कविरत्न भी आप हैं और वीररत्न भी आप ही । आप में ही ये दोनों रत्न छिपे हुए हैं । आपको इसका यही दंड उचित है कि आप स्वयं ही स्वतः का समग्र वृत्त कथन करें । यह लोगों का आग्रह है । इसलिए अब लोकमत का अनुसरण जिस मार्ग से हो, वही लोकहित का कार्य समझकर आप अपना जीवन-वृत्तांत सबको शीघ्र सुनाओ ।"

: ६ :

राजप्रमुख के अनुरोध का योग्य परिणाम हुआ । वह तरुण राजपूत नम्रतापूर्वक उठकर खड़ा हुआ । वैसे तो अपने हृदय के सुख-दुःख को औरों से कहने की आतुरता किसको नहीं रहती । विनय के कारण उसे थोड़ा संकोच अवश्य हो रहा था । परन्तु वह राजप्रमुख के स्नेहपूर्ण आग्रह से दूर हुआ । वह अन्तर्मुख होकर मौन रहा था कि उसके मन में एक प्रकार की विषमता हो गई थी । जिस में सुख-स्मृति

की तरह विषण्णता उस उत्सव की भावनाओं में प्रकट हो रही थी। बोलना प्रारम्भ करने से पूर्व उसके तेजस्वी चेहरे पर किंचित् हास्य चमका, किन्तु वह किस बात का दर्शक था—सुख का अथवा उदासीनता का, कह नहीं सकते। वह अपनी मधुर वाणी में बोलने लगा, "बन्धुओ, क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? कहने लायक सचमुच ही मेरी जीवन-कथा है भी कहाँ ? किन्तु अब आपकी आज्ञा ही है तो कहना ही पड़ेगा। किन्तु भाइयो ! मैं अपनी कथा न कहते हुए जिसकी स्मृति भी मेरे लिए प्रिय है ऐसे मेरे एक घनिष्ठ मित्र की कथा आपको सुनाऊँगा। उस कथा से—इस नाते मेरी भी कहानी अनायास आपके सम्मुख आ जाएगी।

"मेरा वह मित्र जब शिशु-अवस्था में था, एक दिन माँ कहकर उस पर झपटा। माँ की साड़ी का छोर पकड़कर अपनी तोतली बोली में बोला, 'माँ ! घर चल' फिर एक बार कहा, 'ए माँ, चल घर चल'। एकाएक किसी क्रूर हाथ ने उसको माँ से जुदा करके दूर कर दिया और उसी क्षण क्या हो यह ध्यान में आने से पहले ही आग भड़क उठी। वह स्थान ज्वालाग्रस्त हो गया, माँ और बच्चा एक-दूसरे से जुदा हो गए। उस दुधमुहें बच्चे का अब न रहा जनक, न रही जननी।

"माँ-बाप से दूर···घर से दूर गया वह बालक अब चौदह वर्ष का किशोर हो गया था। गोवा के सागर-तट पर ऐसे ही एक दिन वह बालक घूम रहा था कि उसको कभी-कभी मिलने वाली एक स्नेहमयी प्रौढ़ा उससे मिली। उसे सम्बोधित कर वह बोला, 'जननी ! ये सब लोग मुझे लुई-लुई कह कर पुकारते हैं। वह मुझे बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगता।'

"वह अनपेक्षित प्रश्न सुनकर उस प्रौढ़ा का मुख किसी अलौकिक संतोष से चमक उठा, उसने हँसकर जवाब दिया—

'अरे, नहीं पसन्द आता है तो दूसरे नाम क्या कम कर्कश हैं। इनमें से तुझे कौनसा भला अच्छा लगेगा। देख मैं तुझे शंकर नाम से पुकारूँगी। पसन्द आया।'

"यह नाम सुनते ही उस किशोर के अन्तर्मन में अस्पष्ट पूर्व स्मृतियों ने हलचल पैदा कर दी और क्षणार्ध में ही उसके उन भोले

नेत्रों से आँसू वह निकले। तब गद्गद होकर उस देवी ने उस किशोर को प्रेम-पूर्वक अपने पास खींचकर कहा—'अरे भोले, इसमें इतनी दिल में लगाने की कौनसी बात है? किन्तु देख शंकर, उस दुष्ट अन्तुनिया की उपस्थिति में यह नाम न बताना, अच्छा!'

"'किन्तु चाची, भला क्यों न कहा जाय?' स्वाभाविक जिज्ञासा से उस किशोर ने प्रश्न किया।

"'यह देख बेटा!' किंचित् गम्भीर स्वर में बोलकर वह प्रौढ़ा थोड़ा रुक गई और फिर कहने लगी—'तूने प्रश्न पूछा है और मुझे जो बताना था उसके लिए अब योग्य अवसर आ गया है। इसलिए गाड़कर रखे धन के समान हृदय की गहराई में आज तक गुप्त रखी बात आज तुम्हें बताऊँगी। अरे! तूने मुझे अपनी बचपन की बात बतायी थी कि तू जब बहुत छोटा था, तब किसी क्रूर हाथ ने तुझे तेरी माँ से दूर खींचकर भीषण अग्निकांड रचा था। तो फिर सुन, वह दुष्ट कृत्य करने वाला हाथ इसी नीच अन्तुनी का ही था। उस दुष्ट ने ही तेरी माँ को और तुझे भ्रष्ट किया था।

"'अरे, तेरी वह सती माँ हिन्दू ही थी और पिता भी हिन्दू था। इतना ही नहीं, तुम्हारा कुल पवित्र ब्राह्मण कुल था। अरे भाई, तेरे पिता की उस अग्नि में आहुति पड़ी और तेरी माता जलते हुए शरीर के साथ सागर में कूद पड़ी थी। किन्तु उससे पूर्व उसने तुमको मुझे सौंपकर आग्रहपूर्वक कहा था कि योग्य अवसर आने पर मैं तुझे तेरा कुल-रहस्य अवश्य बता दूँ। तेरे माता-पिता की इस प्रकार बलि चढ़ा कर उस दुष्ट अंतुनी ने ईसाई-धर्म के अनुसार तुझ पर जल छिड़क कर तेरा 'लुई' यह नया नामकरण किया था। भूमि पर जल छिड़कने से बीज अंकुरित होता है, किन्तु यह ईसाइयत का जल छिड़कने से बीज जल जाता है। किन्तु मेरा वह बीज जल न जाय, इसीलिए इन ईसाइयत के अमंगल संस्कारों को धोकर तुम पर पवित्र संस्कार करने के लिए ही तेरे शैशवकाल से तुझे मैं भगवान रामचन्द्र, सती सीता और उस गोकुल-निवासी नन्दनंदन भगवान श्रीकृष्ण की पावन कथाएँ बताती रही हूँ। बेटा! उस देवकुल में तेरा जन्म हुआ है। वही तेरा वंश है और वही पवित्र हिन्दू-धर्म है। अन्य धर्म तो केवल जलसिंचन

करता है। इसलिए वह धर्मामृत पीना ही तेरा कर्तव्य है। किन्तु बच्चा ! मैंने जो कुछ कहा है, यह सब गुप्त रखना है। जैसे राख से चिनगारी ढकी रहती है उसी तरह। क्योंकि अनुकूल समय के बिना सत्कर्म करने पर भी शक्ति का अपव्यय ही होता है। अनुचित समय पर खेत में बीज बोने पर वह नष्ट ही हो जाता है। इसलिए अभी हमें यह बात गोपनीय रखनी ही चाहिए। किन्तु योग्य अवसर मिलते ही हम दोनों को यहाँ से अपने-आपको मुक्त कर लेना है, यह ध्यान में रहे।'

"इस प्रौढ़ा से यह गुप्त रहस्य जानकर उस बालक के मन में अनेक प्रश्न उठे और अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए वह अपनी चाची से पूछने लगा, 'चाची, तू यह सब क्या कह रही है ? क्या तुझे भी मेरे समान ज़बरदस्ती से इन दुष्टों ने गुलामी में जकड़ कर रखा है ? फिर मेरी माँ भी तुझे कैसे मिल सकी थी ? कब मिली थी ? बता, सब-कुछ मुझे बता दे।'

"तब उस प्रौढा ने कहा, 'कहूँगी बेटा, सब-कुछ कहूँगी। अपनी अपूर्ण आशा पूर्ण करने के लिए तथा अपने भोगे हुए कष्टों का प्रतिशोध लेने के लिए हम वृद्ध तुम्हारी नई पीढ़ी के अतिरिक्त भला किसको कह सकते हैं ? तू हिन्दू है—इसलिए मेरी पीढ़ी की दुःखपूर्ण कहानी सुन !

" 'बेटा, साष्टी के निकट हमारा पुराना गाँव था। मराठा कुल में मेरा जन्म हुआ था। बारह वर्ष की आयु में ही मेरा एक देखमुख कुल के एक अनुरूप वर से विवाह हो गया था। चैत्र मास के दिन थे। गौरी-पूजन के निमित्त मेरी सौत, मैं तथा मेरी सहेली अपनी एक अन्य सहेली के घर हँसती-खेलती जा रही थीं। वहाँ पहुँचने पर हिरनियों के झुण्ड पर जैसे भेड़िया धावा बोल देता है, उसी प्रकार पुर्तगाली सिपाहियों ने उस घर पर धावा बोल दिया। आठ-दस सुन्दर लड़कियों को वे भगा ले गए। मैं तथा मेरी सौत भी उसी में थीं। दुर्भाग्य से उस रात्रि में हम दोनों एक ही दुष्ट-कामुक पुर्तगाली के पंजे में फँस गई। तब उस कामांध को मेरी सौत ने बड़े मीठे शब्दों में कहा, 'देख, तू कितना सुन्दर है ! तेरा गोरा रंग मुझे बहुत अच्छा लगता है। तुझसे भी अधिक मैं ही तुझ पर अधिक मोहित हो गई हूँ। किन्तु देख, आज रजोदर्शन का तीसरा दिन होने से मैं आज स्नान करने के बाद

ही तेरी इच्छा पूर्ण करूँगी। इसलिए मुझे उस कुएँ से पानी तो ला दे।' मेरी सौत की वह चाल सफल रही। पानी लेने के लिए वह दुष्ट जैसे ही कुएँ के किनारे पर खड़ा हुआ तो मेरी सौत ने बड़े साहस के साथ उसको कुएँ के अन्दर धकेल दिया। मेरी सौत बचपन से ही साहसी थी। मेरा हाथ पकड़कर वह मुझे जंगल में ले गई। रात जंगल में बिताकर हम प्रातः गाँव में पहुँच गईं। हमारी इस प्रकार की मुक्तता का हमें बहुत हर्ष हुआ। हम दोनों आनन्द में मस्त मन में कल्पना कर रही थीं कि हमारे शौर्य-साहस का गाँव के सब वृद्धजन, सास-ससुर, हमारे पति, सहेलियाँ, सब हमारी प्रशंसा करेंगे। सब हमारी बार-बार स्तुति करेंगे, ऐसी सुखद कल्पना करते-करते ही हम दिन निकलने के समय अपने घर के सामने आ खड़ी हुई। गोशाला की गौएँ हमें देखकर रंभाने लगीं। बछड़े भी आनन्द से कूद-फाँद करते हुए हमारे शरीर को प्रेमपूर्वक चाटने लगे। धीरे-धीरे करके और पड़ोस के लोग बाहर आने लगे। हम भी गद्‌गद हृदय से अपने सास-ससुर को वन्दना करने के लिए आगे बढ़ीं, तो तुरन्त ही सब ओर से एक ही आवाज़ उठी, 'दूर हटो! चलो, दूर हटो!'

"बेटा, किसी हिंसक पशु को देखकर जिस प्रकार लोग ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर उसे भगा देते हैं, उसी प्रकार हमारे प्रियजनों ने हमें भगा दिया। हमने रो-रोकर तथा शपथपूर्वक अपनी शुद्धता एवं पवित्रता की दुहाई दी, किन्तु हाय रे दुर्भाग्य! सभी ग्रामवासी अत्यन्त निर्दयता-पूर्वक एक ही बात आग्रहपूर्वक कहते रहे, 'जाओ! अपना काला मुँह लेकर यहाँ से चली जाओ!'

"वापस लौटने के सिवा हमारे लिए और कौन-सा मार्ग बचा था। जिस जंगल में रात बिताई थी, उसी में फिर गईं। हमें लौटती देखकर गौएँ रंभाने लगीं। बछड़े हमें चाटने लगे, किन्तु गौएँ चराने वाले के मुख से एक भी शब्द सहानुभूति का नहीं निकला।

"निःसहाय अवस्था में उस जंगल में रोकर रात बिताई। मेरी सौत ने कहा, 'अरी, हम भी अब कहाँ तक रोती रहेंगी? बस कर अब रोना। चल उठ, उन बड़ी-बड़ी मूँछों वाले पुरुषों को अगर शर्म नहीं है तो हम किस बात की शर्म करें? चल, हम गोवा को ही चलें। इन हीजड़ों के घरों में रो-रोकर जीवन व्यतीत करने के बजाय अपनी

तरुणाई का मोल अगर पराक्रमी पुर्तगालियों के महलों में होने वाला हो तो भले हो। चल, उठ जल्दी कर।'

"तब मैंने कहा, 'नहीं-नहीं, सौत जी, यह क्या विचित्र बात आप कर रही हैं? अजी, वे म्लेच्छ तो स्त्रियों को वन में बलात्कार से शील-भ्रष्ट करते हैं, यह तो सबको पता है। इसलिये केवल हमारे ही कहने पर समाज किस प्रकार विश्वास कर सकता है? और भ्रष्ट व्यक्ति तो वंशशुद्धि की दृष्टि से त्याज्य ही होता है।'

"क्रोध से आग-बबूला होकर सौत बोली, 'अरी, वाह री! कौन भ्रष्ट हुआ है? हम पवित्र हैं, यह तू तो जानती ही है और मान ले कि बलात्कार से हमें भ्रष्ट किया होता तो भी क्या उस कारण हम वास्तव में अपवित्र हो जातीं? कल जिन हमारी सहेलियों को वे जबरदस्ती ले गए हैं, उन्हें क्या हम भ्रष्ट समझ लें? नहीं, नहीं? जिस स्त्री को यवन म्लेच्छ भगाकर ले जाते हैं और बलात्कार करते हैं, उस स्त्री को भ्रष्ट मानने के बजाय उसके पति को भ्रष्ट मानना चाहिए, जिस पर अपनी स्त्री की रक्षा का दायित्व होता है। हमारे ये पुरुष कायर हैं और अपने पर अनुरक्त अपनी पत्नी का रक्षण भी उनसे नहीं होता है। हमारे हाथों में चूड़ियाँ भरने के बजाय, ये अपने ही हाथों में क्यों नहीं भर लेते? अगर पुरुष अपने हाथों में चूड़ियाँ डाल लें तो हम तलवार उठायेंगी? यह स्वांग तो रचते हैं शेर का, और कहते हैं, हमारा कुल भ्रष्ट हो जाएगा। वाह रे, वाह! क्या है इनका न्याय? अपनी प्रिय पत्नी को प्रत्यक्ष अपनी आँखों के सामने शत्रु भगा कर ले जाते हैं और यह फिर भी जीवित घर लौट आते हैं। उन पापियों के स्पर्श से न घर भ्रष्ट होते, न समाज। किन्तु जिस धर्म-शत्रु को पुरुष मार नहीं सके, उसका वध करके तेजस्विनी अपना सतीत्व सुरक्षित रखकर घर लौट आती है उसके स्पर्श से, कहा जा रहा है, घर भ्रष्ट हो जाएगा—समाज भ्रष्ट हो जाएगा। अपनी अर्धांगिनी जो सती के समान पवित्र है, केवल पराये ने बलात्कार से भ्रष्ट की, इसलिए अपने घर में उसे स्थान देना घृणास्पद प्रतीत होता है। वाह रे, इनका धर्मशास्त्र! वाह रे, इनका यह न्याय!!'

"सौत का यह क्रोध शांत करने के लिए मैंने ज़रा उसे पुचकार कर कहा, 'अजी, आपका कहना तो सच है, किन्तु हमें दूर धकेलने

वाले वे लोग भी हमारे ही हैं, यह कैसे भूला जा सकता है। जो नर-राक्षस अपने दुर्बल पुरुषों पर अत्याचार कर उनकी रोती-बिलखती स्त्रियों को भगा ले जाते हैं—मानो भगाना अपना धर्म मानते हैं—उन दुःखों के इस राक्षसीपन से हमारे अपने ही लोगों का हमें बहिष्कृत करना कुछ अधिक अमानुषिक भीषण कृत्य नहीं कहा जा सकता। अपने लोगों की सहनशीलता ही बहुत संकुचित है यह सच है, किन्तु अपने शत्रुओं के जुल्मों का हम कैसे समर्थन कर सकते हैं ? यह बोलना भी हमें कैसे शोभा देता है ? अजी, कुछ भी हो, संसार में हरएक को अपनी जाति-प्रिय होती है। काली-गोरी, सुन्दर-कुरूप जैसी भी हो, हरएक को अपनी माँ क्या प्यारी नहीं होगी ? अपने तो कुछ त्याग नहीं। मैं तो कहूँगी, स्वजनों ने अपराध के बिना भी हमारा वध कर दिया तो भी देह त्यागते समय उन स्वजनों के कल्याण की ही कामना हमें करनी चाहिए। इसलिए मैं कहती हूँ कि यूँ ही दुःखी होकर शोर मचाते हुए शत्रुओं के घर जाने के बजाय हम इसी जंगल में कंद-मूल खाकर यहीं जीवन व्यतीत करें।'

"मेरा यह कहना सुनकर मेरी सौत का विवेक जागृत हो गया। अनुताप से उसकी आँखें गीली हो गईं। उन्होंने कहा, 'सच है बहन तेरा कहना ! यहीं जंगल में रहेंगे।'"

: ७ :

उस किशोर को वह प्रौढा आगे बताने लगी, "किन्तु बेटा, थोड़े ही दिनों में ईसाइयों के वे उदार धर्म-प्रचारक (?) मनुष्यों का शिकार करते हुए उस वन में भी पहुँच गए। हाथ में शस्त्र के संगीन की नोंक से हमारे हृदय पर बाइबिल लिखने के लिए उद्यत उन नराधम धर्म-प्रचारकों की पलटन उस जंगल में भी घुस आई। मानो दुर्भाग्य ही हमारा नाश करने पर तुला हुआ था।

"हम पर उनकी नज़र पड़ते ही—'यही हैं वे, भाग कर गई थीं, अरे पकड़ो, भागो।' बस यही सब एक साथ बोल उठे। हम दोनों ही भयभीत होकर सुरक्षा के लिए गाँव की ओर दौड़ पड़ीं। किन्तु हमारे भाग्य का द्वार बन्द था, क्योंकि गाँव के परकोटे का दरवाज़ा बंद था ! मिन्नत-खुशामद करने पर भी दरवाज़ा नहीं खुला। और अन्त में, जिसको टालना चाहते थे, वही भाग्य में आया। अन्य अनेक कैदियों के

साथ ही हमें भी मारपीट कर बाँध दिया गया और हमारा वह जुलूस गोवा की ओर बढ़ा।

"गोवा के मुख्य बाज़ारों में हमें पशुओं की तरह रस्सों से बाँध कर खड़ा कर दिया गया और साग-सब्ज़ी की तरह हमारी बिक्री की गई। किसी ने बच्चे को मोल लिया तो किसी ने माँ को और किसी ने किसी स्त्री को तो किसी ने उसके पति और भाई को। हमारी बिक्री होने पर हमें भी जानवरों की तरह खींचकर ले जाने लगे। किन्तु यह सब भयंकर अत्याचार चल रहा था दयामय ईसामसीह के मन्दिर की छत्रछाया में, उसी के प्रतिपादन में सत्य एवं धर्म के अनुसार।

"बेटा, मेरी बिक्री हुई थी तीस रुपयों में और दूसरों ने मेरी सौत को खरीद लिया था। मेरी सौत मुझको प्राण से भी प्यारी थी और उसे जब खींचकर ले जा रहे थे तो मेरे प्राण ही जा रहे हों, ऐसा दुःख मुझे हुआ था। किन्तु वह लड़की तो मानो आग थी आग। उस दुःख के ईंधन से वह मानो और भी भड़क उठी। जो पादरी उसे गुलाम बनाकर घर ले गया तो उसने छुरा भोंक कर ढेर कर दिया। अतः उसका दंड भोगे बिना वह कैसे छूटती? तुरन्त ही उसे दौड़ती गाड़ी से बाँधकर गोवा की सड़कों पर घसीटा गया। उस अवस्था में वह और भी चिढ़ कर ईसाई पादरियों की निन्दा कर रही थी। आखिर में वह घायल होकर गिरी, उसके मुँह से रक्त बहने लगा और उस मृतप्राय अवस्था में उसे 'सांताकाज' के तयखाने में डाल दिया गया। उस तयखाने में न प्रकाश था, न हवा थी। जो हिन्दू कैदी उस तयखाने में थे, उन्हें अत्यन्त निर्दयतापूर्वक पीटा जाता था। न अन्न, न जल दिया जाता था और बाद में उन्हें वधशाला की ओर ले जाया जाता था। इसी प्रकार कष्ट देकर एक दिन मेरी सौत को भी वहाँ लाया गया। यहाँ बलात् ईसाई-धर्म स्वीकार करने वालों को तो मुक्त कर दिया गया। किन्तु जिन्होंने इनकार किया, उनका वध किया गया, वे शहीद हो गये। किन्तु बेटा, मेरी सौत का उन्होंने वध भी नहीं किया और उसको अनन्त यातनाएँ दीं।

"किन्तु बेटा, मेरी सौत बड़ी धैर्यशाली थी। उसके मुख से केवल एक ही मधुर ध्वनि निकल रही थी, 'गोविन्द, गोपाल! हे दयामय कृष्ण कन्हैया।' अन्त में उसके हाथ काटकर जला दिये गए, घुटने की तथा एड़ी की अस्थियों पर प्रहार किये और आखिर में उसका गला

घोंटा गया और इस प्रकार तड़फड़ाते हुए उसके प्राण हर लिये गए।

"बेटा, मेरी सौत ने एक पुर्तगाली को मार डालने का अपराध किया था, किन्तु जिन बेचारों ने पुर्तगालियों की थोड़ी भी हानि नहीं की थी, उन्हें भी केवल अपने हिन्दू-धर्म को न छोड़ने के कारण यातनाएँ देकर समाप्त किया जाता रहा। बेटा, ये 'सांताकाज' के संत (?) इस प्रकार अमानुषी अत्याचारों द्वारा यीशु के पैर रक्त से धोते और उसे नरमांस का भोग चढ़ाते थे। धन्य हैं वे संत और धन्य है उनका वह ईसाई-धर्म। एक दिन बाजार में मुझे अनायास ही मेरी सौत की वह अद्भुत वीरकथा सुनने को मिली। यह सुनकर मन बेचैन हो उठा। लगा कि मुझे भी उसका अनुकरण करते हुए अपना अन्त कर लेना चाहिए। मैं जिस पुर्तगाली के घर में थी, वहाँ एक अन्य वृद्ध स्त्री भी कैद में थी। वह मेरे मन की अस्वस्थता को ताड़कर कहने लगी, 'सुनो बेटी, मैं भी तेरे समान हिन्दू ही हूँ। तेरे मन की बेचैनी मेरी समझ में आ रही है। किन्तु कोई दुःसाहस करके मरने की जल्दी नहीं करनी चाहिए। अपना हृदय हम पवित्र रख सकते हैं न ? बस तो फिर ! अरी, इन दुष्टों से निबटने के लिए छल-कपट से ही काम लेना चाहिए। धर्म के लिए जो शहीद हुए, वे तो सचमुच ही धन्य हैं। उन्होंने तो धर्म-ऋण की पाई-पाई चुका दी यह तो मानना ही होगा; किन्तु अन्य जो शेष रह जाते हैं, क्या धर्म के लिए कुछ भी नहीं कर सकते ? अगर वे स्वधर्म की निष्ठा हृदय में रखकर धर्म की विजय की कामना करते हुए जीएँ तो वे भी धर्म-ऋण से मुक्त हो सकेंगे।

'इन राक्षसी पुर्तगालियों का नाश केवल एक या दो वीरों के शहीद होने से नहीं हो सकेगा। उसके लिए सम्पूर्ण राष्ट्र को प्रतिकार के लिए कमर कसनी पड़ेगी। इसलिए बेटी, तू अगर मृत्यु वरण करने को सिद्ध है—सांताकाज की वह घोर यातनाएँ सहन करने की तेरे मन की तैयारी है, तब तो तुरन्त साहस कर मरने के बजाय मृत्यु के विषय में निर्भय होकर प्रतिकार कर, धर्म का हमें अब पालन करना चाहिए। और देख, सांताकाज का यह भीषण अत्याचार सहना सरल नहीं है। और वह सहन करना सदा लाभदायक भी नहीं होगा। किन्तु अत्याचारी अधर्मियों को जो दंड दे सकता है, वही धर्म, यश प्राप्त कर सकता है। अपने हृदय-मंदिर में भगवान श्री रामचन्द्र की मूर्ति को स्थापित

कर उसका कभी विस्मरण न होने पावे यह ध्यान रख। श्री शान्तादेवी के मन्दिर पर म्लेच्छों ने जब आघात करके उसे भंग किया था, उस समय उन विप्रश्रेष्ठों ने गहन गुफा में देवी की मूर्ति को छिपाकर उसका रक्षण किया था। उसी प्रकार तू अपनी हृदय-गुफा में श्रीराम की मूर्ति का स्मृति से रक्षण कर और विवशता के कारण ईसाई-धर्म के जो रीति-रिवाज पालन करने पड़ेंगे, उन्हें निःसंकोच पालन कर। वेशक चर्च में प्रार्थना में भी सम्मिलित हो। वहाँ के उपदेश में जो सनातन सत्य सुनने को मिलेगा, उसको भक्तिभाव से ग्रहण कर। उसको वैदिक ही मान। किन्तु वहाँ के धार्मिक उपदेशों में—ढोंग का और रक्तपिपासु शैतान के स्वरों का तुझे मन-ही-मन धिक्कार करना चाहिए और उसे छोड़ देना चाहिए। वेटी, यह सब ऊपर का दिखावा कायम रखकर तू एक काम कर। वही अपना असली जीवन-कार्य समझ। वेटी, इसके बाद तुझे भ्रष्ट हिन्दू माता-पिता के जो बच्चे मिलेंगे, उन्हें गुप्तरूप से मिलकर उनके माता-पिता की जानकारी उन्हें देनी है। ईसाई पादरी उन्हें पाखंड पढ़ा रहे हैं, यह रहस्य बताना चाहिए। मदांध रावण का वध करने वाले धर्म-संस्थापक भगवान रामचन्द की वीरकथा सुनाकर उन्हीं के वंशज होने का साक्षात्कार उन्हें कराती रहना।

'वेटी, जो शत्रु के अत्याचारों से भयभीत होकर धर्म-त्याग करते हैं उनके कारण हिन्दू समाज की बहुत हानि तो नहीं होती, किन्तु उनकी अगली पीढ़ी हम हिन्दुओं की कट्टर शत्रु बनकर समाज को बहुत नुकसान पहुँचाती है। उन्हीं का उपयोग हमारे शत्रु हमारे विरुद्ध मुख्यतः कर लेते हैं। इसलिए उन्हीं को अपने धर्म की ओर खींचकर 'शठं प्रति शाठ्यम' जवाब देना आवश्यक है। और इस कार्य को चतुराई से करने पर इसमें अच्छी सफलता भी मिलती है। अरी, मैंने स्वयं ऐसे भ्रष्ट कुल में जन्म पाया। कम-से-कम दस तरुणों को ईसाई-धर्म के थोथे उपदेशों का भंडा-फोड़ कर उन्हें पुनः स्वधर्म भक्त बनाया है और हिन्दुत्व के लिए रण-मैदान पर खुले-आम जूझने के लिए सावंतजी के पास भेज दिया है। और देख, हम दोनों ही केवल पुर्तगालियों के विरुद्ध षड्यंत्र रच रही हैं ऐसी बात नहीं। तेरे-मेरे अतिरिक्त कितने ही बड़े-बड़े लोग इस गोमांतक में गुप्तरूप से इन पुर्तगालियों को भगाने का षड्यंत्र करते रहते हैं। और इन षड्यंत्रों

के सूत्र उधर महाराष्ट्र में सावंत, घोरपड़े तथा स्वयं पेशवा तक पहुँच गए हैं, यह ध्यान में रख।'

उस वृद्धा का कथन कहकर वह प्रौढ़ा किशोर को आगे सुनाने लगी, "बेटा शंकर! उस दिन से मैं वृद्धा के उपदेश के अनुसार धर्म की विजय के लिए सतत प्रयत्नशील हूँ। मेरा प्रयत्न जारी था और एक दिन महाराष्ट्र धर्मवीर दिग्विजयी श्रीमंत बाजीराव ने कोंकण भूमि और समुद्र स्वतन्त्र करने के लिए युद्ध की तैयारी की। उस समय हमारे षड्यंत्रकारी साथियों ने शत्रु की छावनियों के समाचार गुप्तरूप से पेशवा को पहुँचाकर तथा गुप्त-रूप से शिक्षित किये तरुण सैनिकों को हिन्दुओं की सेना भेजकर छत्रपति शिवाजी की परम्परा की यथा-संभव सेवा की थी। उसी समय बेटा शंकर! एक दिन ईसाइयों के अत्याचार से असह्य होकर तेरी माँ—वह सती रमा, मेरे पास आई और तुझे मेरे सुपुर्द कर बोली, 'मैं तो अब प्राण-त्याग करूँगी। किन्तु यह देवासुर संग्राम लड़ने के लिए हमारे वंश की यह अमानत, यह मेरा लाडला लाल शंकर—मैं तेरे सुपुर्द करती हूँ। संभालना इसे।'

थोड़े हर्षयुक्त आवेश से वह वृद्धा बोली, "अरे शंकर! उस युद्ध में श्रीमंत पेशवा के हिन्दू वीरों ने परशुराम-क्षेत्र का पाँच सौ कोसों से भी अधिक किनारा उन पापी पुर्तगालियों के अधिकार से मुक्त करा लिया। आज इन दुष्टों के हाथों में पूरा पाँच कोस भी क्षेत्र बचा नहीं। मुक्त हुई उस पवित्र भूमि में जहाँ पहले ईसाई-धर्म का विस्तार था, वहाँ आज पवित्र वेद-मंत्रों का पठन-पाठन निर्विघ्नता से चल रहा है। और हमारे भग्न मन्दिरों का पुनरुद्धार होकर उन पर सोने के कलश चढ़ गए हैं। अरे, उत्तर-भारत में अनेक राजनीतिक उलझनें पैदा होकर पेशवा को उधर युद्ध के लिए जाना न पड़ता तो यह पाँच कोस गोवा की भूमि भी उन दुष्टों के हाथ में न रह पाती। बेटा, इस प्रकार पाँच सौ कोस पवित्र भूमि मुक्त कर राष्ट्र के देह का घाव कुछ मात्रा में यद्यपि भर गया हो तो भी राष्ट्र की आत्मा का जख्म अभी तक नहीं भरा है। वह तो अभी भी बह रहा है। वह हम लोगों को अब भरना है। अर्थात् जिन्हें हमारे धर्म-शत्रुओं ने गुण्डागर्दी से भ्रष्ट किया है, उन्हें पुनः शुद्ध हुए अपने सनातन-धर्म का अमृत पिलाना चाहिए। जैसे इन पाँच सौ कोसों की मुक्त भूमि में ईसाई बने हिन्दुओं

का पुनः धर्म-प्रवेश हुआ है।

: ७ :

किसी पौराणिक अद्भुत आख्यान जैसी उस साध्वी द्वारा कही हुई कथा वह किशोर विस्मित-चित्त होकर अत्यन्त एकाग्रता से सुन रहा था। कहानी समाप्त होते ही जैसे वह भय-विमुक्त हो गया, फिर होश में आकर उसने अत्यन्त उत्सुकता से पूछा, "अरी चाची, फिर मुझे भी तू छत्रपति की छावनी में गुप्त-रूप से भेजेगी न ? कब भेजेगी ? देख, शिकार में मेरी बंदूक का निशाना कभी चूकता नहीं और मैं अब घुड़सवारी करने में भी प्रवीण हो गया हूँ। ऐसी मजबूती से बैठता हूँ कि कभी गिर ही नहीं सकता। हाँ, कह तो कब मुझे छत्रपति के पास भेजेगी ?"

उस तेजस्वी वीर किशोर की वह साहसपूर्ण उत्सुकता देखकर वृद्धा को बहुत आनन्द हुआ। वात्सल्य-भाव से उसके मुख पर अपना अमृतमय हाथ फेरते हुए उसने उसे आश्वासन दिया, "अरे शंकर! तुझे इतनी जल्दी क्या हुई है ? अरे, शेर के बच्चे, शेर की छावनी में तुझे भेजना ही होगा। पर ज़रा धैर्य से काम लेना चाहिए। अब शीघ्र ही गोवा के उन पुर्तगालियों पर आखिरी हमला करने के लिए पेशवा की सवारी निकलेगी। बस, उसी समय योग्य अवसर देखकर मैं तुझे अवश्य भेज दूंगी। किन्तु बेटा, वह योजना अभी पूर्ण होने को है और उत्तर की ओर तथा कर्नाटक में तनाव अभी काफी प्रबल है। किन्तु शंकर, पुर्तगालियों की सत्ता उखाड़ने के लिए एक कार्य और करने की आवश्यकता है। तुझे तो ज्ञात ही है, मेरा मालिक कितना सज्जन है। बेचारा पुर्तगाली होकर भी हिन्दुओं की यातनाओं को देखकर कितना विह्वल होता है। मेरे तो वह इशारे पर चलता है। मुझे अथवा तुझे उसने क्या कभी भी गुलाम की तरह समझा है ? उसी के सहारे क्या तुम्हें मैंने शस्त्र-विद्या नहीं सिखाई ? अर्थात् इसका गुप्त हेतु उसे कभी पता नहीं चला। महत्व की बात यह है कि यह मेरा मालिक अपनी मातृ-भूमि को वापस लौट रहा है और उसका आग्रह है कि मैं भी उसके साथ जाऊँ। और तुझे मैं कहना चाहती हूँ कि मेरे भी मन में आता है कि यूरोप का प्रवास करने से अपना भी लाभ होगा। इन पुर्तगाली यूरोपियन लोगों का बल कितना है। उनके सद्गुण कौन से, दुर्गुण कौन से, क्या वास्तव में पुर्तगालियों के कोलम्बिया आदि

राज्य हैं ? उनके गुप्त भेद आदि सब जानकर अपनी मातृभूमि को लौटा जाए। मेरे साथ तू भी चल। अरे, हमें जो यहाँ ज्ञात नहीं, वे शत्रु के सब दाँव-पेच तू शत्रु के अखाड़े में ही सीख और लौटकर अपने भाइयों को सिखा। कच ने क्या देवासुर युद्ध में ऐसी ही युक्ति से काम नहीं लिया था। और अब हम हिन्दुओं को इन यूरोपियन् लोगों से ही युद्ध लड़ना है। तब उनके दाँव-पेंच हमें मालूम होने ही चाहिएँ। इसलिए बेटा, तू भी मेरे साथ अवश्य चल। तेरे सहवास में उस विदेश में भी मुझे अपने घर जैसा ही लगेगा। मेरा मालिक तुझे अन्तुनी से खरीद ले, ऐसी मैं शीघ्र ही व्यवस्था करूँगी। किन्तु शंकर! अपनी इस योजना का एक शब्द भी कहीं किसी से कहना नहीं।"

थोड़े ही दिनों बाद उस साध्वी चाची के साथ शंकर का जल-पर्यटन शुरू हुआ। एक नवीन अनुभूति से उसका मन भर गया। वह अनन्त आकाश, वह असीम महासागर! महान् विश्वशक्ति और उनमें अणु-बिन्दु वह केवल जिसका अस्तित्व ऐसा वह किशोर प्रथम ही जहाज़ में खड़ा था। वह अनुभव उसके लिए सर्वथा नवीन था। अनन्त तत्व के साक्षात्कार से वह स्तम्भित हो जाता, सारे उदात्त और उदारभाव उसके अन्तःकरण में उभरने लगे। प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल विश्व के उस अनन्त तत्व को प्रणाम करते हुए वह प्रार्थना करता, "हे अनन्त उच्च विरल नील अम्बर! तथा हे अनन्त अगाध तरल नीला सागर! तुम्हारे सम्मुख मैं एक क्षुद्र जीव हूँ, आप महान् हैं और मैं आपको विनम्रभाव से प्रणाम करता हूँ।"

वह साध्वी उसे कभी समुद्रमंथन की, तो कभी सागर पर सेतु-बंधन की—कभी विश्व के निर्माण की, तो कभी विश्व-प्रलय की ऐसी नानाविध रमणीय कथाएँ सुनाती। उस साध्वी के मुख से कथाएँ सुनते समय वह किशोर शंकर बहुत प्रसन्न होता था। इस निरीक्षण से उसके अनुभव का कोष समृद्ध होने लगा था। प्रवास में अनुभव की गई आकाश, जल, वायु इनकी गतिविधियाँ एवं स्थितियाँ उसके प्रखर मस्तिष्क में लिखी जा रही थीं, विविध द्वीपसमूह, वहाँ के रीति-रिवाज, विविध भाषा-विशेष इन सबका ठीक अवलोकन करते हुए उसका प्रवास चल रहा था। किसी बन्दरगाह में जब जहाज़ रुक जाता था तो वहाँ का वह इतिहास जानने का प्रयत्न करता। पुराने हिन्दू-

नाविकों द्वारा स्थापित हिन्दू बस्तियों का वृत्त भी अनेक स्थानों पर उसे सुनने को मिला। कितना अभिमान और आनन्द हुआ उसे वह वृत्त सुनने में ? पुर्तगालियों के सागरीय पराक्रम की कथाएँ भी उसे सुनने को मिलीं। उसमें उसे यह भी ज्ञात हुआ कि एक हिन्दू थिमैय्या ने ही इस्लामी क्रूरता का विनाश करने के लिए पुर्तगालियों को हिन्दुस्तान का मार्ग दिखाया था। विश्व के सारे भूखंडों के लोग पुर्तगालियों से कैसे आतंकित हैं, इसका भी अनुभव उसे हुआ। साथ ही यूरोपीय राष्ट्रों में आपस में जैसा संघर्ष चल रहा है, यह भी समझ में आया। उस आपसी खींचतान के कारण पुर्तगालियों की सत्ता अब शिथिल होकर क्षय होने के मार्ग पर है। यह भी उसके ध्यान में आया कि पूर्व की ओर गड़े हुए उनके पाँव और महाराष्ट्र पर उनकी पकड़ स्वाभाविक ही ढीली पड़ रही है। वसई का पराभव करने वाला चिमाजी अप्पा का नाम तो उसे अफ्रीका के भी आगे लोगों के मुख से सुनने को मिला था। वह सुनते समय उसका मन अभिमान से फूल जाया करता। उसके मन में विचार आता कि हम हिन्दुओं का नवदल भी ऐसा दस दिशाओं में विजयी संचार भला कब कर पाएगा ?

अफ्रीका के भू-प्रदेश को पार कर उसके जहाज़ ने अब अटलांटिक महासागर में प्रवेश किया। एकाएक एक सायंकाल एक विस्तीर्ण खेत के समान लम्बी-चौड़ी प्रचण्ड मछली अकस्मात् सागर-पृष्ठ पर उछल कर आई। उस मछली के पीछे-पीछे उछलती हुई आई प्रचण्ड गगनचुम्बी लहरें और उनका पीछा करता हुआ एक विशालकाय तिमिंगल (जल-जन्तु) बड़े वेग के साथ बढ़ता हुआ दिखाई दिया और फिर उनका जो बड़ा भयंकर संग्राम शुरू हुआ, उसका वर्णन क्या किया जाए। समुद्र के अन्य बड़े-बड़े जलचर भी उस भयंकर युद्ध को देखकर दूर भाग गए, वह जहाज़ भी किंचित् रुका। उस लोमहर्षक संग्राम का वह भीषण दृश्य देखते हुए शंकर अपनी चाची से बोला, "अरी, चाची ! हिंसा-प्रतिहिंसा से भरे हुए इस सागर में ये मछलियाँ कैसे रहती होंगी ?" उस पर किंचित् उदास हास्य प्रकट कर वह बोली, "वाह रे पगले ! अरे, हम मनुष्य क्या ऐसे ही भूमि पर नहीं रहते हैं ? कम-अधिक मात्रा में मानवों की विचित्र जातियों में जीने के लिए अथवा सत्ता प्राप्त करने के लिए ऐसा ही कलह चलता हुआ क्या हम

देखते नहीं ?" किन्तु उनका वह सम्भापण एकाएक समाप्त हो गया, क्योंकि उस पुर्तगाली जहाज़ पर संकट की सूचना देने वाला विगुल बजा और क्षणार्ध में इधर-उधर खलवली मच गई। उस पुर्तगाली जहाज़ पर एक अंग्रेज़ी लुटेरे जहाज़ ने अकस्मात् आक्रमण कर दिया। फिर चहुँ ओर संघर्ष शुरू हो गया। हाथापाई, पकड़-धकड़, बन्दूकों की आवाज़ें, शस्त्रास्त्रों की खनखनाहट, विगुल ध्वनि, घण्टों की घटघनाहट, शत्रुओं का कत्लेआम, नाविकों की चीख-पुकारें, इन सबका ऐसा कुछ प्रचण्ड कोलाहल-सा उस अँधेरे में उठा कि सागर की वह भयंकर जलचरों की लड़ाई भी रुकी और वे भयभीत होकर भाग गए, किन्तु जहाज़ों की झड़प तो चल ही रही थी। घड़ी-दो-घड़ी दोनों जहाज़ों में तुमुल युद्ध हुआ, किन्तु अन्त में पुर्तगाली जहाज़ को अंग्रेज़ी लुटेरे जहाज़ ने मात दे दी। पुर्तगाली जहाज़ के बचे हुए सभी लोगों को गुलाम बनाकर पकड़ लिया गया। सूर्योदय के उपरान्त लुटेरों ने लूट का बटवारा किया। चाची बेचारी बूढ़ी—वह निरुपयोगी मानी गई। अतः उन दुष्टों ने उसे मार डाला और शंकर? वह लूट का माल माना जाकर लुटेरों में से एक मूर के हिस्से में आया। उसके जीवन की, फिर से नए सिरे से, संघर्ष कहानी शुरू हुई। पुर्तगालियों की गुलामी में जो कष्ट था, उससे तो शैशवकाल से ही परिचय हो गया था, किन्तु अब वह वालक मानो तेल की कड़ाही में से निकलकर आग में ही गिर पड़ा हो, ऐसा मोरक्को के क्रूर एवं जंगली गुलामी में उसको अनुभव होने लगा। इस नए इस्लामी वर्बरता के सामने पुर्तगालियों के पाशवी अत्याचार सौम्य ही थे और अब उसे साहस बँधाने वाली और उसे सांत्वना देने वाली चाची भी जीवित नहीं थी। उस उदार साध्वी का स्मरण कर वह किशोर एकान्त में कभी रोता और कभी उसके द्वारा की हुई अपेक्षाएँ स्मरण करता और अपनी स्थिति से चिन्तित होता। ऐसे विचारों से नित्य वह मन में दुःखी रहता। मोरक्को में उस राक्षस के घर में कुत्तों को डाले जाने वाले टुकड़े उस बेचारे शंकर को खाने पड़ते। दिन में पशुओं के साथ पशुओं की तरह मेहनत करता और रात्रि में पशुओं के वाड़े में ही पड़कर रात गुज़ारता। एक वार तो उस मूर की दुष्ट पत्नी ने उसको नरक में ही फेंक दिया था। गाली-गलौज और मार तो कदम-कदम पर उसे सहनी ही पड़ती

थी। फिर भी शंकर को आत्मघात करने की इच्छा नहीं हुई, क्योंकि अपनी चाची की इच्छा कभी-न-कभी अवश्य पूर्ण करूँगा, ऐसा मन-ही-मन उसे विश्वास था। एक दिन खेत से लौटते हुए एक खिड़की में उसे पुर्तगाली जैसी दिखने वाली सुलक्षणी और हेमगौर सुन्दर कुमारी दिखाई दी। पके हुए नींवू के समान सुन्दर अंग-कान्ति, उसकी वह मोहक-मुद्रा और सौष्ठवपूर्ण शरीरयष्टि ! क्षण-भर शंकर को लगा कि वह मोरक्को में नहीं, किन्तु गोवा में ही है। वह उसकी ओर एकटक देख ही रहा था तो सस्मित-मुद्रा से और मंजुल आवाज़ में शुद्ध मराठी में उसने उससे पूछा, "हे सुन्दर तरुण ! तेरा क्या नाम है ? वता, मुझे वता तो।" विजनवास में सुनने को मिले हुए मातृ-भाषा के उस मधुर वाक्य से शंकर को अत्यन्त हर्ष हुआ।

उससे प्रत्युत्तर दिया, "शंकर।"

"वाह, कितना मधुर नाम है।" वह किशोरी वोली, "तुझे वहुत कुछ वताना है, कल फिर से तू यहीं पर आना, मेरी तुझे सपथ है, तुझे आना ही होगा।" ऐसा जल्दी-जल्दी में कहकर वह शीघ्रता से निकल भी गई, किन्तु अन्दर जाते हुए वार-वार दूसरे दिन आने का वह आग्रह करती रही।

गाली-गलौज और अपमानपूर्ण जीवन में जिसका व्यक्तित्व कुचला गया हो, ऐसे उस गरीव वालक को आज एक नया अनुभव मिला। 'मेरा नाम भी मधुर लगे ऐसा एक क्यों न हो, कोई आत्मा तो संसार में है।' यह सोचकर अत्यधिक हर्षानन्द से उसने स्वयं को स्वत: के अश्रुओं से ही स्नान करा लिया। उसके हृदय के अन्धकार में उसकी तेजस्वी मूर्ति विजली के समान चमककर उसका हृदयाकाश प्रकाशित करने लगी। तरुण शंकर प्रति-दिन उस मार्ग से जाता। कभी उसकी ओर देखता तो कभी-कभी अवसर पाकर चार शब्द भी उससे वोलता। धीरे-धीरे उनका परिचय प्रेम में परिणत होने लगा। एक दिन संकेत पाकर उस तरुणी ने ऊपर से एक पत्र उसकी ओर डाला शंकर ने झट से उसे उठाकर तथा योग्य अवसर पाकर उत्सुकता के साथ पढ़ा। उसमें उस तरुणी ने अपनी कथा संक्षेप में लिखी थी।

भला कौन थी वह ? उसकी माता थी गोमांतक की एक ब्राह्मणी स्त्री, और पिता था पुर्तगाली राजकुल का एक पुरुष। माँ तो कभी

की परलोकवासी हो चुकी थी, किन्तु पिता पुर्तगाल में जीवित था। एक दिन स्पेन के एक वन्दरगाह के रास्ते से वह चल रही थी तो उसे एकाएक डच जहाज़ पर भगाकर ले जाया गया और उन्होंने फिर उसे मूरों के एक नेता को लक्षावधि रुपयों में वेच डाला। कैसा है यह ईसाइयों का धर्म ? मछलियाँ मछलियों को खाती हैं, आदमी आदमियों को खाते हैं, कैसी यह विचित्र वात है ? जो वलवान् होते हैं, वे धर्म का भी कान मरोड़ कर रख देते हैं। अन्त में वेचारी की किस्मत में मूर के घर में गुलाम वनकर रहने की वारी आई थी। किन्तु आज वह उस मूर के घर से भाग निकलना चाहती थी। कुशलतापूर्वक उसने सव तैयारी कर ली थी। यह तरुण शंकर यदि उसके साथ चले तो वह निश्चित समय पर उसके साथ भाग जाने वाली थी। उसने पत्र में लिखा था, "एक मूर इस गाँव में गोवा के एक तरुण को गुलाम वनाकर लाया है ऐसा मैंने सुना था, मैं उसे ढूँढ़ ही रही थी, इतने में सहज तू मुझे दिखाई दिया। क्षण-भर तेरा दर्शन हो, इसलिए ही यह यातनाएँ सहन कर मैं दिन-भर जीती हूँ। हे तरुण ! तू यदि चलने को तैयार हो तो हम लोग सचमुच ही यहाँ से भाग चलें। किन्तु तू सचमुच चलेगा न ? अन्यथा तेरे विना अकेली भाग जाने से यहाँ का यह दुष्ट दास्य भी मैं सुखद मानूँगी।"

शंकर ने वह पत्र पुनः-पुनः पढ़ा। उस पत्र के वह शब्द मेघों से टपकने वाले उन स्वाति के अर्थ-विन्दुओं को उसने अपने हृदय के सीप में ग्रहण कर लिया और फिर उसने उसे प्रत्युत्तर में लिखा, "हे शुचि-व्रते ! तेरे साथ तू जहाँ कहेगी, मैं चलने को तत्पर हूँ। तेरे स्नेहमय शीतल मंजुल हास्य के प्रकाश ने मेरे जीवन का अन्धकार दूर कर दिया है। इस गुलामी में युगानुयुग विता दें तो भी जीवन सार्थक नहीं हो सकता, किन्तु हे शुभे ! तेरे मुक्त सहवास में जो एक दिन भी वीतेगा, उससे मेरा सम्पूर्ण जीवन सफल होकर मैं मरने को सिद्ध हो जाऊँगा। और एक दिन अकस्मात् उस गाँव में इधर-उधर खलवली मच गई कि एक गुलाम और एक दासी भाग गए। खोज की, किन्तु न मिले। किसी ने कहा, 'वाघ ने मारकर खा लिए।' दूसरे ने कहा, 'मैंने उन्हें शेर द्वारा खाते हुए प्रत्यक्ष देखा है।' तीसरा भी इसी प्रकार की गवाही दे रहा था।

: ८ :

अब वे दोनों अफ्रीका में एक घोर जंगल की कुटिया में जाकर सुरक्षित रहने लगे थे। एक मूर स्त्री ने उन्हें मूर वेष पहना दिया। इस मूर स्त्री का तथा उस तरुणी का पितृ-गृह का पूर्व परिचय था। इस तरह गुलामों को मुक्त कर वह स्त्री धन कमाया करती थी। पहले भी उसने इसी प्रकार एक गोरे गुलाम को स्पेन में उसके घर पहुँचा कर बहुत धन कमाया था। अब भी उस मूर स्त्री ने ही पर्याप्त धन पाने की आशा से उस गोरी तरुणी को खोजकर उसके सामने भाग जाने का षड्यन्त्र रचा था। जंगल की उस झोंपड़ी में संग रहने के कारण शंकर तथा लिली को वह घोर अरण्य भी प्रेम, भय तथा नीति का एक सुन्दर गुरुकुल ही प्रतीत होने लगा था।

महा भयानक अरण्य में उन दोनों का एकान्त जीवन! एक अति भीषण तथा अनोखा अनुभव था। इस जीवन-सृष्टि के कुछ चिरन्तन सत्य हैं। नागरी जीवन में पूर्ण रूप से कभी समझ में नहीं आ सकते। ये जानना हो तो संस्कृति से दूर घोर अरण्य में जाना होगा। वहाँ के भीषण निविड़ में ही उनका साक्षात्कार होता है। निविड़ अरण्य में तो सारी जीव-सृष्टि की उग्र भीषण स्वाभाविकता अनुभव में आती है। सुखद कल्पनाओं के स्वर्णमय पर्दे में रहने वाले सुसंस्कृत नागरिकों को वह जीव-सृष्टि का मूलारम्भ का सत्य, किन्तु उग्र स्वरूप दृष्टिगोचर हो जाए तो वह भय से घबरा जाता है। अफ्रीका के उस घनघोर अरण्य में सृष्टि का स्वरूप ऐसा ही अनोखा था।

कितना घोर था वह अरण्य! वहाँ के प्राणियों की लीला भी कैसी क्रूर! कितने प्रचण्ड थे वे वहाँ के गरुड़ पक्षी! उनकी एक झपट में ही भेड़-बकरियाँ उनके पंजों में ऊँचे गगन में उठाई जाकर उड़ते-उड़ते उनका सफाया भी हो जाता था। वहाँ की चीलें तथा गिद्ध भी वैसे ही प्रचण्ड और उतने ही क्रूर! सभी पक्षी इस प्रकार दूसरे पक्षियों को मारकर ही अपना उदर निर्वाह करते हैं। वैसे ही महा भयानक मगरमच्छ पानी पीने आए हिरणों के बच्चे तो पूरे ही उनके गले के नीचे उतर जाते। वहाँ के अजगर भी कितने प्रचण्ड। दो मनुष्यों की बाँहों में समा नहीं सकेंगे, इतने पुष्ट तथा इतने लम्बे भी। पेड़ पर ही जंगली मुर्गियों तथा बत्तख ही नहीं तो जंगली कुत्ते वह अजगर अपने

एक श्वास से खींचकर निगल जाते थे। वहाँ के उन भयंकर साँपों का दंश अगर हुआ तो महावृक्ष भी सूख कर जहर से जल जाता था। वहाँ के वह प्रचण्ड उड़ते नाग, शिकार के भागने पर उड़ते-उड़ते पीछा करते तो नागों का दुश्मन गरुण उन उड़ते नागों पर झपट कर उन्हें ऊँचे आकाश में ही ले जाकर पटकता जिससे उनकी हड्डी-पसली अलग-अलग हो जाती। वे मस्त जंगली भैंसे और उनकी वह लाल-लाल खूनी आँखें ! उनके साधारण धक्के से ही एकाध वड़ा वृक्ष जड़-मूल से उखड़ जाता, किन्तु इससे भी वढ़कर महाक्रूर प्रचण्ड व्याघ्र। ऐसे किसी व्याघ्र ने गर्जना कर अपनी पूँछ जमीन पर ज़ोर से मारी तो दूर खड़ा वह जंगली भैंसा अथवा एकाध वृपभासुर के भी पाँव लड़खड़ा जाते। वहाँ के भेड़ियों के, चीतों के तथा रीछों के मुँह तो सदा शिकार के गर्म रक्त से रंगे रहते थे। दो-दो पुरुष-ऊँचाई के भयंकर कपि पूँछ-हीन हनुमान की तरह वड़े प्रवल और खड़े होने पर लगते, मानो राक्षसी शरीर के मनुष्य ही खड़े हों। इसीलिए शायद उन्हें वानर (वननर) कहा जाता। अफ्रीका के वे खास गोरिल्ला वानर सचमुच ही वहाँ के जंगली मानवों के अवश्य पूर्वज होंगे। कैसी उनकी प्रचण्ड देह, उनके वाहु कितने मोटे तथा उनके उड़ान कैसे ऊँचे और लम्वे भी। एक वार भी अगर वे आपस में गुत्थम-गुत्था हो जाएँ तो कई दिनों तक उनका युद्ध चलता रहता था। यह देखने पर रामायण में कपि, वानर युद्ध की अद्भुत कथाएँ केवल निराधार कल्पना ही नहीं, उन पर विश्वास होने में देर नहीं लगती थी।

उसी प्रकार वे सियारों के और भेड़ियों के चालवाज़ झुंड ! उनमें से कुछ गहरे गढ़ों में छुपकर वैठते और वाकी के हिरणों के झुंड का पीछा करके युक्ति से उसी दिशा में उन्हें भगाते। इस तरह हिरन अनायास ही उन छिपकर वैठे हुए भेड़ियों के शिकार हो जाते। वे सव मिलकर उन पर टूट पड़ते और उन्हें मारकर रक्त पीते, माँस खाते। और यह देखिये मदमत्त हाथी, मानो पहाड़ ही चल रहे हों। मनुष्य जैसे किसी कीड़े-मकोड़े को पैर के नीचे कुचल देता है, उसी प्रकार वे हाथी छोटे-छोटे जानवरों और मनुष्यों को अपने पैर के नीचे कुचल देते, किन्तु ऐसे वड़े-वड़े गजेन्द्र भी वहाँ के रक्त-पिपासु और तीखे नाखूनों वाले सिंहों के पंजों से भयग्रस्त हो जाते थे।

इस प्रकार उस घोर अरण्य में रहते हुए वह प्रणयी युगल शंकर और लिली एक दिन शिकार करते-करते एक पर्वत पर जा पहुँचे। सामने ही एक वहुत पुराना और विशालकाय वृक्ष खड़ा था। उस वृक्ष के खोखले में झाँक कर शंकर वोला, "देख लिलि ! यहाँ जहरीली मक्खियों का छत्ता है, इसकी एक मक्खी ने भी किसी हिंसक पशु को भी यदि काट खाया तो वह मर जाता है। फिर मनुष्य की क्या वात, अगर उसे छेड़ा जाए तो ये ज़हरीली मक्खियों की सारी फौज छेड़ने वाले का पीछा करके उसे गाँव तक भी काटती हैं। और तव तक उनको सन्तोष नहीं होता, जव तक गाँव के सभी व्यक्तियों को काट कर वदला न ले लें।"

यह सुनते ही लिली के शरीर पर रोंगटे खड़े हो गए और उसके मुँह से एक नाजुक-सी चीख निकली तथा शंकर से सट कर खड़ी होकर कहने लगी, "सचमुच शंकर ! इस सारी सृष्टि में मानव कितना क्षुद्र तथा दुर्वल है, वेचारा केवल अपनी ईश्वर-प्रदत्त देह के भरोसे ही अगर वह जीने की सोचेगा तो जहाँ 'जीवो जीवस्य् जीवाम्' यही न्याय चलता है, वहाँ इस जंगल में वह क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकेगा। शेर, वाघ, हाथी तो दूर ये मक्खियाँ भी उसे संघर्ष में मार डालेंगी। इतना ही नहीं तो वह इस गाँव के सामने भी टिक नहीं सकेगा। अगर गाय से संघर्ष हुआ तो उसके सींगों से हमले को रोकने के लिए कौन उपयुक्त अवयव मनुष्य को दिया है ? पहले जव मनुष्य कभी अन्य पशुओं के वीच में ही रहता था, तव भी देह-वल से नहीं तो आत्म-वल ने ही उसने अपनी प्रभुता स्थापित की थी।"

इस पर शंकर वोला, "अरी लिलि, आत्म-वल से यह जिया, इसका भी आखिर क्या मतलव ? क्या उसने भेड़ियों को वेद पढ़ाये, या हिरणों को वेदान्त सिखाया ? अथवा शेरों को शम-शान्ति-समाधि, गिद्ध को गीता, अथवा मगरमच्छ को सांख्यतत्व का उसने उपदेश तो नहीं दिया ? उसने आत्म-वल से अपना वर्चस्व स्थापित किया तो वह कैसे किया ?"

"अरी लिलि, आत्मवल यानि वुद्धिवल ही तो है ? देख, आखिर में जो-जो यन्त्र होगा, वह हम मानव का एक-एक अधिक विकसित,

अधिक शक्तिशाली, अधिक कार्यक्षम ऐसी इंद्रिय ही तो हैं। फिर पशु-पक्षी जो कुछ खाते हैं, वह उनको जठराग्नि त्वरित पचा डालता है, किन्तु जो आसानी से पचता नहीं है उसको पचाने के लिए मनुष्य ओखली-मूसल तथा चूल्हे का उपयोग करता है। शेर से जूझने में वैसे मनुष्य नहीं टिक सकता, परन्तु डण्डे के सहारे वह अपनी वाहु वलवान वना लेता है, दुन्दुभी नाद उसकी दहाड़ वन जाती है। कवच के रूप में चर्म धारण कर लेता है और नरसिंघा उसके कण्ठ से स्नायु वन कर करकश गर्जनाएँ करता है। पशुओं के सींग होते हैं, तो मनुष्यों ने सींगों के मुकावले पर भाला वना लिया है, इसी प्रकार उसके धनुप से छूटने वाले वाण तथा वन्दूक से निकलने वाली गोलियों के रूप में उसका हाथ कितना संहारक वन जाता है। सिंह के समान मनुष्यों को नाखून नहीं होते, किन्तु तलवारें, छुरे आदि हम मनुष्यों के विकसित नाखून ही तो हैं? आखिर इस प्रकार तीक्ष्ण शस्त्ररूपी नाखूनों के द्वारा अपना आत्मवल मनुष्य ने प्रकट किया, इसीलिए केवल वह अरण्य के इस घोर कलह में प्राचीन काल में टिक पाया था। नहीं तो इस दुर्वल मानव को साधारण कीटों ने भी दंश करके मिट्टी में मिला दिया होता।

"हे लिलि, इसीलिए तो प्राचीन काल में आर्य जव भारत के घोर अरण्य में प्रत्यक्ष हिंसा के जवड़े में ही रहते थे, तव उन्हें यही शिकार यज्ञविधि का एवं यज्ञ-धर्म का प्रमुख साधन लगा होगा। इस कारण उस समय के ऋषि भी धनुष-वाण धारण करते थे। और वेदों के पठन के समान ही धनुर्वेदों का भी शिक्षण देते थे। किन्तु वाद में हिंसक पशुओं का नाश होकर सुरक्षा उत्पन्न हुई, कृषि का विकास हुआ, जलाशयों के किनारे पर नगर-कन्याओं के पानी भरने के लिए सुन्दर घाट तैयार हो गए। पहले जलाशयों से पानी लेकर लौटने वाली कोई कुमारी प्रायः वाघ की शिकार वनती थी अथवा जंगल के नरभक्षी राक्षस वालकों को भगाकर कच्ची ककड़ी की तरह खाते थे। अव वह सव ही समाप्त हो गया। जंगल ही सव नष्ट होने से वह भय नहीं वचा। परन्तु आजकल जंगल की नीति से मुक्त निर्विघ्न व शान्ति, सुखमय जीवन व्यतीत करने वाले नगरवासी प्राचीन-काल के शिकारी-जीवन के उपकारों को भूल गए और नागरिक सुरक्षा तथा सीमित जीवन

को ही अखिल सृष्टि का सत्य समझने लगे हैं।

"लिलि ! जनपद वातावरण से दूर इस ओर अरण्य के प्राणी जीवन को देखकर भारत में रामायण-काल तक यज्ञ तथा मृगया आवश्यक क्यों मानते थे, और आगे चलकर बुद्ध के काल में अहिंसा का अतिरेक क्यों हुआ, यह भली प्रकार से समझ में आ जाता है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' यह सृष्टि-जीवन का नियम सत्य क्यों है ? इसका साक्षात्कार भी ऐसे अरण्य में ही हो सकता है, तथा मानवी इतिहास का पहला पृष्ठ भी इस घने जंगल के भोज-पत्र के किसी भी पृष्ठ पर पढ़ने को मिलेगा। सुसंस्कृत नगरी के आस-पास के उद्यानों में सृष्टि जीवन का सत्य-स्वरूप भला कैसे देखने को मिलेगा ? नागरिक जीवन में रहने वाला मानव अपने मस्तिष्क में सृष्टि-विषयक कल्पनाओं का जाल बुनता है। और वास्तविकता से बहुत दूर उस कल्पना-सृष्टि को ही सत्य समझने लगता है। उसकी वह कल्पनाओं की चार-दीवारी काफी मजबूत होने पर भी घोर अरण्य की नग्न वास्तविकता की आँधी के सामने अथवा सत्य-सृष्टि के मुख से निकलने वाले भीषण फुंकार के सम्मुख वह सारी चारदीवारी ढह जाती है।"

शंकर का यह भाषण जिसमें थोड़ा लिलि को सम्वोधित किया गया था, बहुत-सा 'आत्मचिन्तन' रूप था, जैसे ही समाप्त हुआ, उसका ध्यान जंगल के एक भीषण नाले की ओर आकर्षित हुआ। एक मस्त मोटा भैंसा अपने ही झुण्ड के एक निर्बल भैंसे पर आक्रमण कर रहा था। एक ही टक्कर के साथ उस मस्त भैंसे ने दूसरे को लोट-पोट कर दिया और अपना तीक्ष्ण सींग उसके पेट में घुसेड़ कर एक सिरे से दूसरे सिरे तक चीर डाला। उस समय उसके प्राणान्त से निकली हुई भीणष चीत्कार तथा दूसरे के विजयोन्माद से की गई गर्जना से दशों दिशाएँ कम्पित हो गई। उनकी गर्जनाओं से उत्पन्न वह सम्मिश्रण नाद हवा में विलीन होते ही उस विजयी भैंसे की गर्जना में एक अधिक विकराल तथा गगनभेदी दहाड़ उठी, जिसे सुनते ही वह मस्त भैंसा मानो अपनी शक्ति खोकर ज़मीन पर लोट-पोट हो गया। एक प्रचण्ड शेरनी ने उसकी पीठ पर आक्रमण कर दिया था, भैंसे को करवट वदलने का अवसर न देते हुए सिंहनी अपने जवड़े से उसका गला पकड़कर उसके गर्म खून को पीने लगी थी। पेट-भर खून पीने के वाद संतुष्ट-

चित्त से उसने अपने पंजों से माँस काटकर भी खाना शुरू किया। इस तरह वह दावत पूरी करके तृप्त होकर लम्बी छलाँगें लेती हुई अपने बच्चों के बीच पहुँच गई। वहाँ पहुँचते ही बच्चों ने घेर लिया। उन भूखे बच्चों को देखकर उसका दिल भी भर आया। दूसरे ही क्षण अपना शरीर ढीला करते हुए वह एक करवट लेट गई। सारे बच्चे स्तन-पान करने लगे। बाघिन उस समय प्यार से अपनी पूँछ धीरे-धीरे जमीन पर पटकने लगी तथा अपनी रक्त-रंजित जीभ से अपने बच्चों को प्रेम-पूर्वक चाटने लगी एवं अपने तीक्ष्ण नाखूनों से उन बच्चों के मृदु शरीर को स्नेह-पूर्वक खुजाने भी लगी। उस भैंसे के माँस का खून से लथपथ टुकड़ा, जो वह अपने साथ लाई थी, बच्चों के सामने डाल दिया। और स्वयं उसे सूँघकर तथा रक्त चाट कर बच्चों को उसे खाने के लिए प्रेरित करने लगी।

निसर्ग का वह अद्भुत भीषण नाट्य देखकर शंकर तथा लिलि दोनों ही आश्चर्य से अवाक् हो गए। अन्त में शंकर ने लिलि से कहा, "देख, लिलि! सृष्टि का यह रहस्य देख! यहाँ करुणा ही मानो क्रूरता को दूध पिला रही है। यह बाघिन बच्चों को दूध पिला रही है, किन्तु हिरणों को मार डालती है। और यह शेरनी तो प्रकृति की प्रतिभा ही नहीं? कभी तो यह अपने प्रखर नाखून तथा दाँतों से भीषण हिंस्रता धारण करती है और दूसरे ही क्षण उसके वत्सल स्तनों से दुग्ध रूप में दया का संनिग्ध प्रवाह वहने लगता है। वह न केवल हिंसक है, न अहिंसक ही। प्रकृति जितनी करुणामय है, उतनी ही क्रूर भी है और इन दोनों प्रवृत्तियों का प्रत्यक्ष रूप है सृष्टि।

"इसलिए लिलि, इस संसार में चाहे व्यक्ति तथा समाज जिसमें दोनों प्रवृत्तियों का योग्य समन्वय प्रकट होता है अर्थात् जब लोग ब्राह्म-क्षात्र तेज का योग्य प्रमाण में समन्वय करते हैं, तभी उनकी उन्नति होती है। पक्षी के जैसे दो पंख हैं, उसी प्रकार ब्राह्म-क्षात्र तेज यह समाज-रूपी पक्षी के दो पंख ही हैं। राजऋषि मनु ने भी ऐसा ही कहा है।"

लिलि तथा शंकर का सम्वाद चल ही रहा था कि संरक्षण करने वाली वह मूर स्त्री धीरे से वहाँ आकर बोली, "अरे भाई, जल्दी से छिप जाओ! वह देखो, वे दूर से आने वाले नग्न मनुष्य दिखाई दे रहे हैं, उनसे जान बचानी हो तो भागो और छिपो। क्योंकि वे कोई जंगली

आदमी ही नहीं हैं, तुम्हारे जैसे कोमल मनुष्यों को खाने वाले ये नर-माँस-भक्षक पशु ही हैं।" यह उसका कहना सुनकर शंकर ने अपनी बन्दूक भर ली और लिलि के साथ छिपकर उनके घात में बैठ गया। किन्तु क्रूर नर-माँस-भक्षक जैसे आए थे, तुरन्त लौट भी गए।

शीघ्र ही उस मूर स्त्री ने सब प्रकार के संकटों को पार करके दोनों को ही पुर्तगाल पहुँचा दिया।

लिलि के पिता को अपनी प्रिय कन्या सकुशल लौट आई देखकर जो हर्ष हुआ, उसका वर्णन क्या किया जाए? उस अति हर्ष के आवेग में उसने लिलि के प्रेमी को भी अपने ही घर में ठहरा लिया। लिलि के ही पिता को आनन्द हुआ, ऐसा नहीं तो सभी पुर्तगाली लोग लिलि की मुक्तता से प्रसन्न हुए। उसकी अद्भुत मुक्तता की लोम-हर्षक कहानी सारे पुर्तगाल में फैल गई। यह समाचार सुनकर प्रत्यक्ष राजा ने भी उसे मिलने के लिए बुलाया तथा उसका सम्मान किया।

"किन्तु बन्धुओ" किंचित् कम्पित स्वर में वह तरुण राजदूत आगे बोला, "वह लिलि पुर्तगाली न होकर हिन्दू होती और उसे मूरों ने भगाया होता तथा अपनी युक्ति, बुद्धि से मुक्त होकर यदि वह अपने घर लौट आती तो क्या उसका ऐसा ही स्वागत होता? भला हमारे हिन्दू बन्धु ऐसे समय क्या करते? मुझे तो लगता है हमारे हिन्दू-समाज में उसे अस्वीकार करते हुए भगा दिया गया होता तथा उसी मुसलमान के घर रहने के लिए बाध्य किया जाता। किन्तु जाने दें इसे···" यह कहकर राजदूत अपनी कहानी कहने लगा—

"बाद में थोड़े ही वर्षों पश्चात् लिलि के पिता की मृत्यु हुई। शीघ्र ही लिलि तथा शंकर का विवाह हुआ। उसके पश्चात् उन दोनों ने संसार का भ्रमण आरम्भ किया। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों को उन्होंने देखा, वहाँ के भिन्न-भिन्न धर्म भी देखे, उनकी राज्य-प्रथा, उनकी सेवाएँ आदि का भी अवलोकन किया तथा मन-ही-मन उन सबका तुलनात्मक विचार करते हुए प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया।

"इस तरह पृथ्वी-पर्यटन कर देश-विदेशों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी प्रिय हिन्दू-जाति के चरणों पर वह ज्ञान समर्पण करने के लिए—उसी प्रकार हिन्दू-स्वातन्त्र्य के लिए रणांगन में अपने जीवन का बलिदान करने के लिए—एक दिन लिलि तथा शंकर एक अंग्रेजी जहाज़ पर

सवार हुए। किन्तु बाद में उनके ध्यान में आया कि मराठों के जहाज़ लूटना ही उनका धंधा था। एक दिन वह अंग्रेज़ी जहाज़ जब हिन्द महासागर में प्रविष्ट हुआ, मराठों के एक लड़ाकू जहाज़ ने एकाएक हमला कर दिया और युद्ध भड़क उठा। अंग्रेज़ी नौका पर होते हुए भी शंकर ने जब मराठों का पक्ष लेना शुरू किया तो उसके जहाज़ के अंग्रेज़ी कप्तान ने उसे बाँधकर तोप के सामने खड़ा किया, किन्तु मृत्यु का वह कराल जबड़ा खुलने से पहले ही उस अंग्रेज़ी जहाज़ में चारों ओर से आग की लपटें भड़क उठी थीं। उस भड़की हुई आग की लपटों के बीच खम्बे से बँधा शंकर सबको दिखाई दे रहा था। एकाएक उन लपटों को चीरती हुई लिलि शंकर की ओर बढ़ती दिखाई दी। उसे देखकर शंकर चिल्लाया, 'खबरदार, लिलि! पीछे हटो। इस आग में तुम क्यों कूद रही हो?'

"उस भड़कती ज्वालाओं के अग्निरथ पर चढ़ कर स्वतः ही आहुति देने के लिए लिलि सिद्ध हो गई थी। उस समय वह रणांगन में ताण्डव करने वाली रणचण्डी के समान वज्र-कठोर दिखाई दे रही थी। क्षण-भर सारे मराठे अग्नि-मिलन को एकटक देखते रहे। गगनचुम्बी ज्वालाओं के पर्दे के पीछे दूसरे ही क्षण वे दोनों अदृश्य हो गए।

"उस युद्ध ने भीषण रूप धारण कर लिया। अंग्रेज़ी जहाज़ों से, नावों से तथा युद्धपोतों से अपनी देशी नौकाएँ भिड़ाकर मराठे निर्भयता से अंग्रेज़ों के जहाज़ों पर चढ़ गए और उन्होंने ज़ोर-से मार-काट शुरू कर दी। रणचण्डी के उस भीषण ताण्डव के साथ पंचमहाभूतों ने भी उसी क्षण मेल बैठाया। एकाएक भयंकर तूफान उठा। प्रलय-मेघों ने अपनी गड़गड़ाहट से तोपों को बधिर कर डाला तथा झंझावात के चाबुक की फटकार लगने से पहले ही क्षुब्ध सागर अत्यन्त भड़क उठा। पंचमहाभूतों का वह प्रलय-प्रकोप देखकर बेचारी बिजली भी भय से काँपने लगी। ऐसी ही एक बिजली कड़क कर चमकी तथा उसने देखा कि उस प्रक्षुब्ध महासागर की एक प्रचण्ड लहर पर लम्बे खम्भे के साथ लिलि तथा शंकर इकट्ठे ही चिपके हुए हैं। वह ऐसे दिखाई दिये, मानो किसी पागल मस्त हाथी ने कमल के दो फूल उखाड़ कर अपने मस्तक पर फेंक दिये हों। उन दोनों को इकट्ठा देखने वाली वह आखिरी बिजली थी। उस बिजली पर घोर अंधकार की

जो प्रदीर्घ पटल छाया पड़ी, उसी में लिलि अदृश्य हो गई। अब भी लिलि इसी प्रकार अदृश्य है और उसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं।

"और बन्धु" वह राजदूत दुःख की एक साँस छोड़कर बोला, "शंकर तथा लिलि की वह कथा यहीं पर समाप्त हो गई।

"अब एक ही केवल बताना शेष है······" यहाँ उस राजदूत ने जहाँ शुक्र बैठा था, उस ओर हेतुपूर्वक मुड़कर देखा और उसी की ओर संकेत करते हुए अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में बोला—"बन्धुओ, अब केवल एक ही बात बतानी है, और वह यह कि उस शंकर की जननी का नाम था रमा तथा उसके पिता का नाम माधव। उनके मूल ग्राम का नाम भार्गव था। इस भार्गव ग्राम से ही शंकर को उसकी माँ के साथ गुलाम बनाकर अंतुनी ले गया था।" अभी तक शंकर की वह कहानी सुनते हुए गाँव के लोगों के हृदय में संदेह का जो बारूद इकट्ठा हुआ था, राजदूत के इन आखिरी शब्दों ने चिंगारी का काम किया। वे सारे ग्राम-जन क्षुब्ध हो उठे और पूछने लगे कि यह कैसे सम्भव है? कुछ तो शुक्राचार्य के इर्द-गिर्द इकट्ठे होकर पूछने लगे—"क्यों शुक्राचार्य जी, यह जो राजदूत कह रहा है, क्या यह सच है?"

तब शुक्राचार्य को समझ में न आया कि क्या कहना चाहिये। और वह चमक गया, किन्तु क्षण-भर में ही अपने को संभाल के निश्शंक मुद्रा में बोला, "यह देखिये, हम दोनों सत्य ही कह रहे हैं। हम दोनों की ही कथायें सत्य हो सकती हैं। भार्गव नाम का दूसरा ग्राम भी हो सकता है तथा इस राजदूत का मित्र शायद वहीं का होगा। दुर्भाग्य से बेचारे की सागर में डूबकर मृत्यु हो गई।"

उस पर वह राजदूत बोला—"अजी महाराज, दुर्भाग्य है आपका कि वह शंकर डूबकर मरा नहीं है और सकुशल जीवित है।"

तब वह शुक्राचार्य मन-ही-मन लज्जित हुआ, किन्तु ऊपर से क्रोधित होकर आखिरी प्रयत्न करने की दृष्टि से शोर मचाते हुए पूछने लगा, "तब फिर वह है कहाँ? ले आइये उसे यहाँ। जो कुछ सच है वह स्पष्ट बताइए, आपको निनामी बाबा की शपथ है। मुझे लगता है कि आप ही गलती कर रहे हैं।" इस पर किंचित् हास्य करके वह राजदूत बोला, "अजी शुक्राचार्य महाराज, भूल आप कर रहे हैं, मैं नहीं। शंकर कहाँ है, यही तो आपका प्रश्न है? तो फिर सुनिए! वह शंकर

स्वयं मुझमें ही है। मेरा घनिष्ट मित्र दूसरा कोई नहीं, मैं स्वयं ही हूँ। मैं ही वह रमा का पुत्र शंकर हूँ।"

शंकर द्वारा किया हुआ वह रहस्योद्‌घाटन सुनते ही चारों ओर सन्नाटा छा गया। सारे समाज में खलबली-सी मची, किन्तु शुक्र ज़रा भी विचलित नहीं हुआ तथा गर्जन करते हुए बोला, "नहीं, नहीं, यह सब कपट है। यह तो कोई बनावटी शंकर है। श्रीमान् संत निनामी बाबा का यह चमत्कार हज़ारों लोगों ने प्रत्यक्ष देखा था। स्वयं व्यास महर्षि ने भविष्य-पुराण में उसका वर्णन किया हुआ है। तथा प्रत्यक्ष ऋषियों ने क्षेत्रों के माहात्म्य में इस भार्गव क्षेत्र का वर्णन कर रखा है।"

शुक्राचार्य का वह कथन चल रहा था और सभा में गड़बड़ तथा अस्वस्थता बढ़ती जा रही थी। उधर शुक्राचार्य की गर्जनाएँ भी चालू थीं। गड़बड़ बढ़ती गई और गड़बड़ी के बीच में ही वह ब्राह्मण शुक्र उस सभा से खिसक कर किधर भाग गया, यह किसी को भी ध्यान में नहीं आया। दूसरे दिन राज-प्रमुख ने उसको पकड़कर लाने के लिए चारों ओर आदमी भेजे। राम के उस मन्दिर में भी कोई नहीं था। शुक्र सदा के लिए ही गायब हो गया था।

कालान्तर में लोग भी उस घटना को भूलगए। शंकर को वहसत्य-कथा भी विस्मृत हो गई, किन्तु वह राम मन्दिर आज भी है। सन्त श्री निनामी बाबा की समाधि भी है तथा निनामी बाबा के अद्‌भुत चमत्कारों की यह दन्त-कथा भी एक सत्य धर्म-कथा, इस नाते प्रचलित है। आज भी पुराण में उस संत श्री निनामी बाबा के उस बाल शंकर को विमान में बैठाकर सदेह स्वर्गारोहण कराने का सरस वर्णन उपलब्ध है।

सचमुच इस संसार में धूर्त लोग असत्य का जब प्रचार करते हैं, तो केवल वह असत्य सत्य से भी अधिक चिरंजीवी होकर प्रचलित हो जाता है, उसकी यह कथा एक उत्तम उदाहरण है।